संवादसेतु

मीडिया का आत्मावलोकन

अंक : 13 | पृष्ठ : 20 | जुलाई 2013 | नई दिल्ली

भारतीय भाषाओं की पत्रकारिता के पुरोधा का महाप्रयाण

- मारक मनोरंजन का सीजन-6
- ड्रैगन की ढाल बना चीनी मीडिया

संवादसेतु

संपादक
आशुतोष

सह-संपादक
जयप्रकाश सिंह

उपसंपादक
सूर्यप्रकाश

कार्यालय
प्रेरणा, सी - 56/20
सेक्टर - 62, नोएडा, उ.प्र.

अनुरोध
संवादसेतु की इस पहल पर आपकी टिप्पणी एवं सुझावों का स्वागत है। अपनी टिप्पणी एवं सुझाव कृपया उपरोक्त ई-मेल पर अवश्य भेजें।

"संवादसेतु" मीडिया सरोकारों से जुड़े पत्रकारों की रचनात्मक पहल है। "संवादसेतु" अपने लेखकों तथा विषय की स्पष्टता के लिए इंटरनेट से ली गई सामग्री के रचनाकारों का भी आभार व्यक्त करता है। इसमें सभी पद अवैतनिक हैं।

अनुक्रम

संपादकीय ----------02

आवरण कथा
बालेश्वर जी का न रहना----------03
बालेश्वर जी की कहानी, उन्हीं की जुबानी----------05
प्रेरणा का स्रोत है बालेश्वर जी की स्मृति----------07

परिप्रेक्ष्य
मारक मनोरंजन का सीजन-6----------08

साक्षात्कार
जिन्हें इंट्रो लिखना नहीं आता, वे पत्रकारिता पढ़ाते हैं
प्रो. शिवाजी सरकार----------10

पुनरावलोकन
गांधी के आदर्शों का 'साप्ताहिक हिंदुस्तान'----------13

संस्मरण
राजस्थान केसरी विजय सिंह 'पथिक'----------15

न्यू मीडिया
गूगल के डूडल में गुल भारत ----------17

अंतर्राष्ट्रीय मीडिया
ड्रैगन की ढाल बना चीनी मीडिया----------18

परिचर्चा
क्या आईपीएल के दौरान महत्वपूर्ण राष्ट्रीय मुद्दे नेपथ्य में चले जाते हैं?----------20

संपादकीय

बालेश्वर जी नहीं रहे। वे भारतीय भाषाओं की पत्रकारिता के पुरोधा थे। गत तीन दशकों से वे मुख्यधारा की पत्रकारिता से दूर थे इसलिये पत्रकारों की नयी पीढ़ी से उनका परिचय नहीं जैसा है। किन्तु कम–से–कम हिन्दी और भारतीय भाषाओं के पत्रकारों के लिये उनका इतना परिचय ही काफी है कि वे आज जिस सोपान पर खड़े हैं, उसकी नींव का पत्थर बालेश्वर जी रहे हैं। पत्रकारिता के आज के दौर में, जब अनेक भारतीय भाषाओं के समाचार–पत्र और पत्रिकाएं देश में सबसे अधिक पाठक होने अथवा सर्वाधिक संस्करण होने के दावे कर रहे हैं, उस स्थिति की कल्पना ही की जा सकती है कि 1950 के दशक तक उनके लिये उनकी भाषा में कोई समाचार स्त्रोत तक नहीं था।

तब टेलीप्रिंटर थे, लेकिन केवल अंग्रेजी में ही काम करते थे। पीटीआई जैसी संवाद समिति थी, लेकिन केवल अंग्रेजी में ही समाचार देती थी। टेलीफोन पर समाचार लेने अथवा देने के लिये ट्रंक कॉल बुक करानी पड़ती थी। मुख्य समाचार भेजने के लिये टेलीग्राम का ही सहारा था। ऐसी स्थिति में संसाधनशून्य संवाद समिति हिन्दुस्थान समाचार ने भारतीय भाषाओं की पत्रकारिता को सामग्री उपलब्ध कराने का संकल्प किया। तब की परिस्थितियों को देखते हुए यह दुस्साहस ही कहा जायेगा।

1954 में हिन्दुस्थान समाचार ने हिन्दी भाषा में पहली टेलीप्रिंटर सेवा प्रारंभ की। इसके बाद ही भारतीय भाषाओं की पत्रकारिता में एक नया अध्याय प्रारंभ हुआ। अगले दशकों में देश भर में सैकड़ों–हजारों नये समाचार–पत्रों और पत्रिकाओं का उदय हुआ। सभी को विश्वसनीय समाचार तथा गंभीर आलेख उपलब्ध कराने का काम हिन्दुस्थान समाचार ने बखूबी किया। इस मौन क्रांति के पीछे अनेक अनाम पत्रकारों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। लेकिन समूचे तंत्र को खड़ा करने और सक्रिय बनाये रखने, उसमें निरंतर मूल्यवर्धन करने तथा आर्थिक संसाधनों के घोर अभाव में भी पत्रकारों का उत्साह बनाये रखने का श्रेय श्री बालेश्वर अग्रवाल को ही जाता है। बालेश्वर जी ने पत्रकारिता को महानगरों की सीमा से निकाल कर गांवों तक पहुंचाया। उन्होंने गांव में रहने वाले हजारों स्ट्रिंगर पत्रकारों का जाल बुना जिसके कारण किसी भी परिस्थिति में दूर–दराज के गांव में घटने वाली घटनाएं देर से ही सही, उन तक पहुंच जाती थी। आज के परिप्रेक्ष्य में बात करें तो संचार के आधुनिकतम साधन होने के बाद भी जिस तरह उत्तराखंड की प्राकृतिक आपदा के पंद्रह दिन बाद भी मीडिया उत्तराखंड के गांवों की स्थिति बताने में असमर्थ है, वह स्थिति बालेश्वर जी के रहते तीस वर्ष पहले भी संभव नहीं थी।

उत्तराखण्ड में सड़कें टूट गयीं, रास्ते बंद हो गये। रास्ते बंद होते ही मीडिया के समाचारों के स्त्रोत भी सूख गये। अगर ओबी वैन जाने के रास्ते बंद हो जायें, अगर मोबाइल नेटवर्क ठप हो जाये तो फिर तबाह हो चुके सैकडों गांवों के लोगों की चीखें और आंसू मीडिया तक नहीं पहुंच सकते। इक्कीसवीं शताब्दी के इस दूसरे दशक की यह कड़वी सच्चाई है। प्रौद्योगिकी के विकास की भी यह सीमा है। पत्रकारिता में गुगल के प्रवेश के बाद अनगढ़ तर्कों और अपुष्ट तथ्यों की बाढ़ आ गयी। वहीं सोशल मीडिया के उद्भव ने हर किसी को टिप्पणीकार बना दिया। हाल ही में कांग्रेस ने सोशल मीडिया के लिये करोड़ों का बजट घोषित करके राजनैतिक प्रतिद्वंदियों के लिये प्रतियोगिता का एक और क्षेत्र खोल दिया है। नतीजा है कि किसी भी घटना के बाद बयानों का ऐसा सैलाब आता है कि और कुछ सूझता ही नहीं। 24 घंटे के खबरिया चौनलों के लिये फेसबुक और ट्विटर के बयानों से ही दिन भर की खबरों का जुगाड़ कर लेने का अभ्यास बनता जा रहा है।

ऐसे में जब कहीं उत्तराखंड जैसी कोई घटना सामने आती है तो निचले स्तर तक फैले संवाद सूत्रों की आवश्यकता अनुभव होती है। ऐसे में ही याद आते हैं बालेश्वर जी, जिन्होंने आधी सदी पहले इसके महत्व को समझा ही नहीं, बल्कि इसे लागू भी किया। सहकारी समितियों के निदेशक के कार्यालय ने अगर उस सामग्री को नष्ट नहीं किया होगा जिसे उन्होंने हिन्दुस्थान समाचार के कार्यालय पर कब्जा करते समय प्राप्त किया था, तो उसमें से बालेश्वर जी के नाम आये हजारों पोस्टकार्ड, अंतर्देशीय पत्र और लिफाफे जरूर मिलेंगे जिन पर उन दूर–दराज के गांवों के डाकखाने की मुहर लगी होगी जहां तक आधुनिक प्रौद्योगिकी से लदा आज का मीडिया पहुंचने की कल्पना भी नहीं कर सकता।

बालेश्वर जी का न रहना

जवाहरलाल कौल

बालेश्वर अग्रवाल का निधन समाचार माध्यमों की सुर्खियों का विषय नहीं बना, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं क्योंकि बालेश्वर जी जब सक्रिय थे, तब भी कभी सुर्खियों में रहे ही नहीं। अखबारों को वे मनोरंजन का मसाला नहीं दे सकते थे, जिसके बिना समाचार माध्यमों का धंधा अब चलता ही नहीं।

वे कहां से आए मुझे नहीं मालूम, लेकिन मेरी उन से भेंट आज से पचास वर्ष पहले 1963 में हुई, जब श्रीनगर से पत्रकार बनने दिल्ली चला आया था। कनाट प्लेस में शंकर मार्केट के 17 नंबर के फ्लैट में मिले थे हम। नीचे शंकर मार्केट की दुकानें थी, ऊपर व्यावसायिक फ्लैटों का आधा भाग यानी एक बड़ा सा कमरा, बस यही कार्यालय था, तब हिंदुस्थान समाचार का। देसी भाषाओं के बहुत से पत्रकार नहीं जानते होंगे और जो जानते भी होंगे वे भूल चुके होंगे कि भारत में भारतीय भाषाओं की पत्रकारिता में इस छोटी सी संस्था की कितनी बड़ी भूमिका रही है और बालेश्वर अग्रवाल होने के क्या मायने होते हैं।

हिंदुस्थान समाचार देश की पहली समाचार एजेंसी थी, जिसने भाषाई पत्र–पत्रिकाओं के लिए समाचार पहुंचाने का काम आरंभ किया था। यह वह युग था, जब अधिकतर हिंदी और दूसरी भाषाओं के समाचार पत्रों के लिए अपने बूते पर देश भर से समाचार संकलित करना संभव ही नहीं था। टाइम्स आफ इंडिया, हिंदुस्तान टाईम्स आदि जैसे अंग्रेजी संस्थानों के हिंदी समाचार पत्रों को छोड़ कर शायद ही कोई हिंदी दैनिक इतने संवाददाता रख पाता था कि वह अपने राज्य की सीमाओं से बाहर के समाचार ला सके। अंग्रेजी की समाचार एजेंसियों और आकाशवाणी के बुलेटिन, यही उन के बाहरी समाचार स्रोत हुआ करते थे। ऐसे में हिंदुस्थान समाचार का देश की कई भाषाओं में दैनिक समाचार देना बहुत बड़ी सुविधा थी भाषाई पत्रकारिता के लिए। वास्तव में भाषाई पत्रकारिता के विकास का इतिहास हिंदुस्थान समाचार के बिना लिखा ही नही जा सकता है।

इसी कमरे के एक कोने में प्रधान संपादक और संचालक बालेश्वर अग्रवाल बैठते थे और अधिकतर कार्यकर्ता उन से कतराते थे। पता नहीं क्या काम पकड़ा दें। सामान्य तौर पर काम से भागने वाले लोग यहां नहीं थे, क्योंकि सब किसी न किसी संदर्भ में एक सेवा भाव से ही इस काम में जुट गए थे। लेकिन बालेश्वरजी जब भी काम सौंपते तो अटपटा ही हुआ

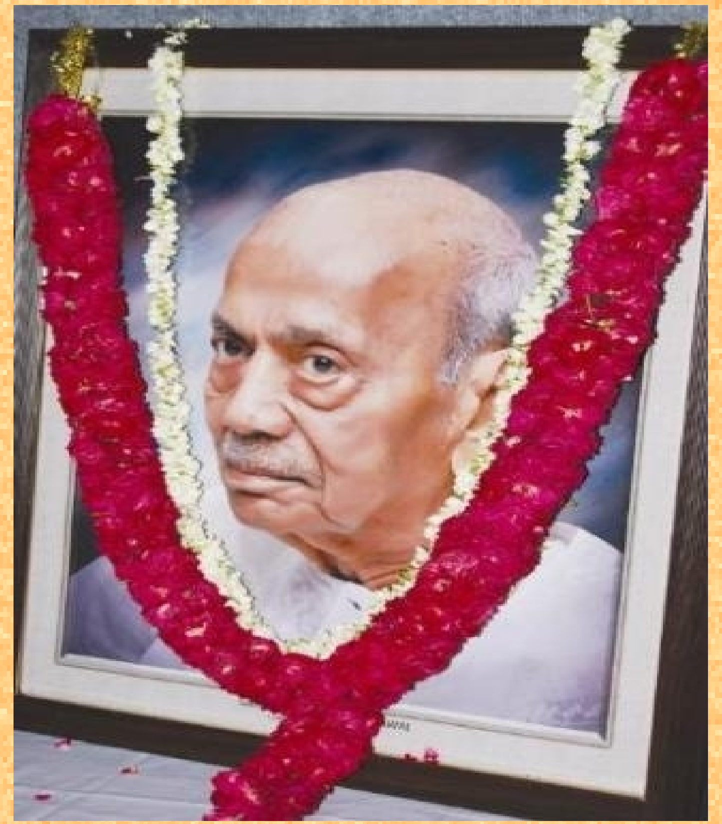

करता था। कम से कम हम लोगों को लगता था। दरअसल उन का अपना सिद्धांत था कि प्रत्येक व्यक्ति में काम करने की बहुआयामी क्षमता होती है, उन सभी आयामों को खोजना और उन का अधिकतम उपयोग करना ही सही प्रबंधन होता है। उन के इस बहुआयामी सिद्धांत में हम गरीब कर्मचारी फंस जाते थे। गलती से मैंने बताया कि एक उर्दू अखबार में हमारी खबर कुछ गलत ढंग से छपी है तो बालेश्वर जी ने खबर के बारे में पूछने से पहले पूछा, तुम्हें उर्दू आती है। मुझे कहना ही पड़ा कि कश्मीरी होने के नाते उर्दू तो आनी ही है। बस आ गई शामत। उस दिन के बाद हिंदी बुलेटिन का उर्दू अनुवाद करके भेजना मेरा काम हो गया। दिन में संवाददाता और शाम को अनुवादक। हर आदमी को कोई न कोई शिकायत थी उनसे। पैसे तो बहुत कम मिलते थे। जिन के घर दिल्ली या आसपास थे, वे तो किसी तरह चला लेते थे, लेकिन हम जैसे कई साथी जो बाहर से दिल्ली आए थे, उन्हें दो–तीन के समूह में कहीं कमरा किराए पर लेकर रहना मजबूरी थी। रात को बैठकर हम अपनी–अपनी भड़ास निकालते थे। हम ने बालेश्वर जी के इस सिद्धांत को मार्क्सवाद का अमर सिद्धांत घोषित किया– हर व्यक्ति से उस की क्षमता के अनुसार और हर व्यक्ति को उसकी आवश्यकता के अनुसार। हमारी क्षमता

और आवश्यकता क्या है यह तय करने का अधिकर भी उन्हीं के पास है।

आज जब उन दिनों की कुढ़न के बारे में सोचता हूं तो बालेश्वर जी की विलक्षण प्रबंधन क्षमता को याद करके आज भी अचंभित होता हूं। अगर वैसा नहीं करते जिससे हमें चिढ़ होती थी तो हिंदुस्थान समाचार का दो चार साल चलना भी मुश्किल होता। कोई बड़ा औद्यौगिक घराना देसी पत्रकारिता के लिए समाचार एजेंसी चलाने में पैसा लगाने को तैयार नहीं था। जिन पत्र–पत्रिकाओं को हम समाचार भेजते थे, उन सब से शुल्क आता ही नहीं था, बार–बार याद दिलाने के बाद भी पैसे नहीं आते तो उस ग्राहक को भूल जाना ही पड़ता था। शुल्क भी बहुत मामूली होता था।

भाषाई पत्र संचालकों को लगता था कि यह कोई धर्मार्थ कार्य है, जिसके लिए पैसे मांगने का काई औचित्य नहीं। धर्म खाते से धंधा चलाने की भावना बहुत से पत्र मालिकों में थी। तब कम्प्यूटर जैसी सुविधा तो थी नहीं, पुराने टेलिप्रिंटर हुआ करते थे, जिनका मासिक शुल्क भी देना कभी–कभी मुश्किल होता था। ऐसे में समाचार एजेंसी कैसे चलाई जाए ? कम से कम मूल्य पर अधिकतम क्षमताओं के इस्तेमाल के बिना ऐसा करना संभव नहीं था। अपने संबंध में भी मुझे अब यह एहसास है कि अगर तब बालेश्वर अग्रवाल के अनुशासन की आग में नहीं तपा होता तो शायद मैं पत्रकारिता के क्षेत्र में कहीं बहुत पीछे रहा होता, पूरी तरह गुमनाम।

दो प्रसंग याद आते हैं। मुझे संस्था में आए केवल पांच महीने हुए थे कि उन्होंने बुलाया और बताया कि मुझे कल से राज्यसभा के लिए रिपोर्टिंग करनी है। मेरा इस से पहले पत्रकारिता का कोई अनुभव नहीं था। नगर पालिका के समाचार लाना एक बात थी, राज्यसभा की प्रेस गैलरी में बैठकर सही–सही रिपोर्टिंग करना दूसरी। सच तो यह था कि मैंने कभी संसद भवन के अंदर कदम भी नहीं रखा था। मैंने अनुंरोध किया कि मुझे कोई और काम दिया जाए। तुम पढ़े–लिखे हो, अंग्रेजी आती है और युवा हो, बस यही काफी है। जो काम कभी न कभी करना है, उसे आज ही क्यों न किया जाए। यानी कोई नहीं चली।

वे दिन मेरे लिए असाधारण अनुभव के दिन थे। उन्हीं दिनों में मैंने देश की गंभीर राजनीति को आमने–सामने देखा। तब राज्यसभा में देश के महानतम वक्ता हुआ करते थे, जिन्होंने बाद में देश की राजनीति पर अमिट छाप छोड़ी। युवा अटल बिहारी वाजपेयी, अन्नादुरै, भूपेश गुप्त, हीरेन मुखर्जी, कामथ। थोड़े ही दिनों में मुझे संसद और संसदीय प्रणाली के भीतर तक झांकने का मौका मिला।

अगर बालेश्वर जी देश की शिखर संस्था से पहचान करने भेज सकते थे तो वे बदनाम गलियों की टोह लगाने का काम भी सौंप सकते थे। एक बार उन्होंने मुझे उस क्षेत्र में रिपोर्टिंग करने भेजा जहां जाने का साहस मैं कभी नहीं कर सकता था। तब जीबी रोड दिल्ली का रेड लाइट एरिया कहलाता था। दो दिन तक तो मैं सोच ही नहीं पाया कि किसी कोठे की सीढ़ियों पर भी कैसे पांव रख सकूंगा। लेकिन आरंभिक हिचकिचाहट के बाद मैंने अपने आप को समझाया कि दलाली भी तो पेशा ही है। अगर इन दलालों को समझ पाऊंगा तो किसी दिन दलाल पथ जैसे संभ्रांत बाजार को समझना भी आसान होगा।

मैं हिंदुस्थान समाचार में बहुत समय तक नहीं रहा। अज्ञेय के नेतृत्व में दिनमान प्रकाशित होने वाला था। मैंने भी आवेदन किया और जब मुझे लग रहा था कि बिना किसी जान–पहचान के मेरे लिए प्रवेश संभव नहीं तो मुझे बताया गया कि मुझे चुन लिया गया है। उस समय मुझे बालेश्वर जी याद आए। जिन्होंने मुझे दिल्ली की इस विराट प्रयोगशाला में जीबी रोड से संसद तक दौड़ा–दौड़ा कर प्रशिक्षित किया था। पत्रकारिता की दुनिया में प्रवेश दिलाने वाले मेरे पहले गुरु बालेश्वर जी का न रहना अपने ही जीवन का एक हिस्सा टूट कर गिरने के समान है।

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार हैं।)

बालेश्वर जी की कहानी, उन्हीं की जुबानी

स्वर्गीय श्री बालेश्वर अग्रवाल का यह साक्षात्कार श्री रविशंकर ने वर्ष 2002 के उत्तरार्ध में लिया था। जब वे राष्ट्रवादी पत्रकारिता पर शोध कर रहे थे। चूंकि यह पुराना साक्षात्कार है, कुछ तत्कालीन घटनाओं का वर्णन बालेश्वर जी ने वर्तमान काल में किया है किन्तु उसे इसलिए नहीं बदला गया है ताकि प्रवाह बना रह सके। राष्ट्रवादी पत्रकारिता पर यह पुस्तक हाल ही में माखनलाल चतुर्वेदी पत्रकारिता विश्वविद्यालय, भोपाल ने प्रकाशित की है तथा श्री रविशंकर सम्प्रति भारतीय धरोहर तथा डायलॉग इंडिया पत्रिकाओं से जुड़े हुए हैं।

मैंने बनारस हिंदू विश्वविद्यालय से 1945 में इंजीनियरिंग की पढ़ाई पूरी की। 1945 से 1948 तक डालमियानगर, रोहतास इंडस्ट्रीज लिमिटेड में नौकरी की। जुलाई 1942 में विद्यार्थी जीवन में ही बनारस में संघ से जुड़ा। इंजीनियरिंग कॉलेज से शाखा में जाने वाला मैं एकमात्र विद्यार्थी था। उस समय प्रांत प्रचारक थे, भाऊराव देवरस। लक्ष्मण राव भिड़े उस समय पुणे से आए थे और विश्वविद्यालय का कार्य देखते थे।

गांधी हत्या के बाद मुझे फरवरी 1948 में गिरफ्तार किया गया था। मैं छह महीने तक कारावास में था। जब मुक्त हुआ तो वापस काम पर ले लिया गया। दिसंबर, 1949 में मेरे खिलाफ वारंट निकले तो मैं भूमिगत हो गया। वहां से लगभग 50 लोगों को सत्याग्रह कराकर मै पटना चला गया। वहां मुझे कोई पहचानता नहीं था। जहां रहता था वहीं पर गुप्तचर विभाग के अधिकारी भी रहते थे, परंतु वे पहचानते नहीं थे। वहीं पर शंकर एजेंसीज के नाम से एक दुकान भी खोली थी। मै उसका व्यवस्थापक था। दो कार्यकर्ता लगे थे। एजेंट के रूप में घूमते हुए वे सूचनाओं को लाने, ले जाने का कार्य करते थे। एक जोगलेकर थे, एक मधु मुरारके। उसी दुकान के पीछे के भाग में प्रांत प्रचारक दिन भर रहते थे। संघ से प्रतिबंध हटने के बाद 'प्रवर्तक' प्रारंभ हुआ। उसके बाद मुझे प्रकाशन का कार्य सौंपा गया। देशभक्ति गीतों की एक पुस्तिका 'आह्वान' समेत तीन पुस्तकें निकाली थीं। 1943, 1945 और 1947 में क्रमशः प्रथम वर्ष, द्वितीय वर्ष और तृतीय वर्ष का प्रशिक्षण लिया। 1951 में देश के समाचार पत्रों को राष्ट्रीय समाचार वितरण की व्यवस्था करने का प्रयत्न प्रारम्भ हुआ और मुझे बिहार के कार्य के लिए चुना गया। मुंबई, नागपुर, लखनऊ, कोलकाता और पटना ऐसे पांच केंद्र प्रारंभ में बनाए गए थे। संघ की योजना से यह प्रारंभ हुआ। दादा साहेब आपटे, शिवराम शंकर आपटे इसके प्रमुख थे। उस समय न्यूज एजेंसी की कोई पूर्व कल्पना किसी को नहीं थी। सभी नए थे। पटना न्यू मार्केट में छोटी सी दुकान थी, जिसमें पानी जैसी आवश्यक सुविधाएं भी नहीं थीं। इसी को कार्यालय बनाया गया था। उधार मांगकर पेट्रोमैक्स लाया गया। टाइपराइटर नहीं होने के कारण लोग अपने हाथ से समाचार लिखते थे और स्वयं ही समाचार पत्रों के संपादकों तक पहुंचाते भी थे। अधिकांश समाचार पत्रों के संपादकीय विभाग के लोग उसे व्यर्थ कहकर फेंक दिया करते थे।

इस प्रकार की अपमानजनक परिस्थिति का मुकाबला करते हुए निरंतर कार्य करते रहे। कभी कोई समाचार छप जाता था तो बड़ी प्रसन्नता होती थी। लेकिन उसमें स्रोत के रूप में हिंदुस्थान समाचार का संक्षेप (हि.स) न छपा होने के कारण निराशा भी होती थी। फिर कभी अच्छी खबर जाने पर (हि.स) के नाम से भी समाचार छपने लगा। अभी तक सब सेवा निशुल्क ही देनी पड़ती थी। लगभग एक वर्ष बाद उस समय के प्रमुख समाचार पत्र 'आर्यावर्त' ने सर्वप्रथम हमें शुल्क के रूप में सौ रुपए मासिक देना स्वीकार किया। बाद में जिलों में अपने संवाददाता रखे गए। उस समय दूरभाष और तार की सुविधा नहीं थी। अतः समाचार आने में काफी असुविधा होती थी। कुछ महीनों के बाद एक टाइपराइटर की व्यवस्था की गई। फिर टाइपिस्ट की भी व्यवस्था की गई। बाद में मुझे कोलकाता के काम के साथ–साथ संपूर्ण पूर्वी क्षेत्र का दायित्व दिया गया। फिर कार्यालय में बिजली भी ले ली गई।

1953 में प्रभाव बढ़ाने के लिए बिहार के संवाददाताओं का सम्मेलन आयोजित किया गया। बिहार के मुख्यमंत्री, कुलपति आदि सभी उसमें उपस्थित हुए। पत्रकारिता के क्षेत्र में इससे हिंदुस्थान समाचार का प्रभाव बढ़ा। उस समय तक समाचार भेजने के लिए हिंदी टेलीप्रिंटर्स नहीं थे। सब अंग्रेजी के ही थे। हमारी पहल पर राम मनोहर लोहिया जो कि हिंदी के बड़े प्रबल समर्थक थे, ने तत्कालीन संचार मंत्री रफी अहमद किदवई से इसके लिए आग्रह किया। जबलपुर के कारखाने में अंग्रेजी टेलीप्रिंटरों के की बोर्ड में देवनागरी अक्षर लगाए गए। इस प्रकार 1954 में हिंदुस्थान समाचार के लिए सबसे पहली बार हिंदी टेलीप्रिंटरों का प्रयोग प्रारंभ किया। हिंदी पत्रकारिता में यह एक क्रांति ही थी। पटना से राजर्षि टंडन और दिल्ली में तत्कालीन संचार मंत्री जगजीवन राम ने आपस में समाचार का आदान–प्रदान कर इसका उद्घाटन किया था। इसके बाद इसका विकास कुछ तीव्र गति से हुआ। 1955 में मुझे दिल्ली आने का निर्देश हुआ तो मैं दिल्ली आ गया। उस समय दिल्ली के हमारे सहयोगी धर्मवीर भारती कुछ कारणवश हिंदुस्थान समाचार से अलग हो गए थे। इसलिए उनके स्थान पर मुझे भेजा गया था।

उस समय तक हिंदुस्थान समाचार एक प्राइवेट लिमिटेड कंपनी थी। मुंबई में इसका मुख्यालय था। तब सोचा गया कि इसके स्वामित्व के स्वरुप को बदला जाए। प्राइवेट लिमिटेड के संचालक भी इसे अपना निजी व्यवसाय नहीं मानते थे। देशहित और भारतीय भाषाओं के हित में किया जानेवाला कार्य समझकर ही वे इसमें सहयोग करते थे। इन पांच वर्षों में हिंदी के अलावा मराठी, बांग्ला और उर्दू में भी समाचार देने लगे थे। संभवतः

कन्नड़ में भी प्रारंभ कर दिया गया था। उस समय ऐसा सोचा गया कि पत्रकारिता के क्षेत्र में एक नया प्रयोग किया जाए। इसके जो कर्मचारी हैं, वे ही इसके स्वामी हो जाएं। इसके लिए हिंदुस्थान समाचार सहकारी समिति का गठन किया गया। इसके लिए कार्यकर्ताओं और संवाददाताओं को ही इसका अंशधारी सदस्य बनाया गया। 1957 में कानूनी तौर पर इस सहकारी समिति को हिंदुस्थान समाचार सौंप दिया गया। इस अवसर पर समारोह भी किया गया। इस समय दिल्ली में डा. पंजाबराव देशमुख इस समिति के मंत्री थे। इसका पत्रकारिता के क्षेत्र में बड़ा स्वागत हुआ। एक अभिनव प्रयोग के रुप में इसे बहुत प्रशंसा मिली। सबने कहा कि सहयोग करेंगे।

इसके बाद शाब्दिक सहयोग, सहानुभूति व प्रोत्साहन तो बहुत मिला, किंतु वस्तुस्थिति यह थी कि समिति के पास पूंजी बहुत कम थी और इसलिए पग–पग पर कठिनाइयां आती रहती थीं। आर्थिक कठिनाइयां अधिक थीं। कोई भी राज्य सरकार या भारत सरकार सहायता के लिए तैयार नहीं थी। इस बीच प्रयास किया गया कि राज्य सरकारें प्रेस ट्रस्ट या यूएनआई की तरह हमारे भी समाचार खरीदें। सर्वप्रथम बिहार सरकार ने हमारी सेवा खरीदी। उस समय हमारे पास टेलीप्रिंटर नहीं था। अतः हम अपनी टाइप की हुई प्रति ही उन्हें देते थे। जब टेलीप्रिंटर हो गया तो उससे भेजने लगे। हालांकि हिंदुस्थान समाचार पर तरह–तरह के राजनीतिक आरोप लगाए जा रहे थे, किंतु इनके बाद भी बिहार की कांग्रेस सरकार ने हमारी समाचार सेवा को खरीदा। टेलीप्रिंटर आ जाने के बाद हमें शुल्क भी अधिक मिलने लगा। यह 1955 से पूर्व की बात है। 1955 के बाद से ही धीरे–धीरे सारे देश का भार मुझे दिया जाने लगा। 1965 में पूरे देश में हिंदुस्थान समाचार चलाने का कार्य पूरी तरह मेरे जिम्मे दे दिया गया। इस बीच कठिनाइयों के बावजूद नए–नए केंद्र स्थापित किए गए। विभिन्न भाषाओं में समाचार सेवा देने की चेष्टा की गई। असमिया, उड़िया, बांग्ला, गुजराती, पंजाबी, उर्दू कन्नड़, तेलुगू आदि लगभग सभी भाषाओं में समाचार देने का प्रयत्न किया गया। गुजराती, मराठी जैसी भाषाओं के लिए तो कोई परेशानी नहीं थी, लेकिन बांग्ला और उड़िया के लिए भी हमने इसका सफलतापूर्वक प्रयोग किया। समाचार पत्रों की दुनिया में इस प्रकार दो अभिनव प्रयोग किए गए।

कार्य बढ़ता गया, केंद्र बढ़ते गए, राज्य सरकारें जो हमसे समाचार सेवा खरीदतीं थीं, उनकी संख्या बढ़ती गई। आय भी बढ़ने लगी, किंतु एक समाचार समिति के लिए जितने संसाधन चाहिए होते हैं, उनके लिए सदैव अर्थसंकट बना रहा। यह कभी समाप्त नहीं हुआ। चूंकि कार्यकर्ता ही स्वामी थे, अतः उनके सहयोग से कार्य बढ़ता रहा।

1975 में देश में आपातकाल लगा। तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के कोप का कहर हिंदुस्थान समाचार पर भी टूटा। सभी समाचार समितियों का विलय करके समाचार के नाम से एक नई समिति का गठन किया गया। उसी में हिंदुस्थान समाचार को भी मिला दिया गया। हम लोग भी उसका हिस्सा बन गए। दो–ढाई वर्षों तक इसी रूप में कार्य करते रहे। हिंदुस्थान समाचार की आय कम होने के कारण हमारे कर्मचारियों के वेतन भी कम थे, परंतु समाचार समिति में सबके वेतन बढ़ गए। उससे वेतनभोगी कर्मचारियों को लाभ हुआ।

1978 में आपातकाल हटने के बाद समाचार समितियों का पुनर्गठन हो गया। अब समस्याएं आ गईं। वेतन बढ़ा हुआ था, उसे कम नहीं किया जा सकता था। नए लोग लेने पर उन्हें भी कम वेतन नहीं दिया जा सकता था और हमारी आर्थिक स्थिति वैसी थी नहीं। प्रारंभ में सरकार द्वारा सभी समितियों को पुनर्वास हेतु कुछ धन दिया गया था तो गाड़ी कुछ आगे बढ़ी, लेकिन एक–दो वर्ष के बाद कठिनाईयां प्रारंभ हो गईं। तब तक पुनः राजनीतिक परिवर्तन हो गया और हिंदुस्थान समाचार पुनः सरकार को खटकने लगा। इसलिए हिंदुस्थान समाचार में हड़ताल भी कराई गई। हड़ताल समाप्त होने के बाद पहले तो इसे लेने की कोशिश सरकार ने की। उसने शेयर तो खरीद लिए थे, परंतु सहकारी समिति होने के कारण वे मालिक नहीं बन सके क्योंकि प्रत्येक शेयरधारी का वोट होता था। जब सरकार इस प्रकार कब्जा नहीं कर पाई तो सहकारी समिति के रजिस्ट्रार के माध्यम से हमें एक कानूनी नोटिस भेजा गया कि व्यवस्था ठीक न होने के कारण क्यों न सरकार इसको टेकओवर कर ले। इसके लिए एक–दो दिन का समय दिया था। हम उसका उत्तर भी नहीं दे पाए। नोटिस की अवधि समाप्त होने और हमारे कोई उत्तर देने से पूर्व ही उनके लोग आ गए कि हम व्यवस्था ले लेना चाहते हैं। हमने कानूनी विरोध नहीं किया, हमने सोचा था कि सरकार ले लेगी तो कर्मचारियों को समय पर वेतन मिलेगा और अन्य व्यवस्थाएं भी बन जाएंगी। अतः विरोध नहीं किया। 1982 में सरकार ने इसकी व्यवस्था अपने हाथों में ले ली, किंतु उनकी नीयत इसे चलाने की बिल्कुल भी नहीं थी। अतः लगभग डेढ़ वर्षों में इसे बंद कर दिया गया।

हिंदुस्थान समाचार बंद होने के बाद 1978 में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग परिषद की स्थापना हो गई थी। मै भी उसके आठ–दस संस्थापकों में से एक था। हिंदुस्थान समाचार से मुक्त होने के बाद 1982 में मुझे इसका कार्यभार सौंपा गया था। एक 'युगवार्ता' नामक निबंध पत्रिका का प्रारंभ 1966 में किया गया था। तब से वह अभी तक चल रही है। मैं ही उसका तब से ही प्रधान संपादक हूं। पटना में जब मैं था, तब नेपाल से बहुत संबंध आया था। 1957 में जब वहां सरकार बदली थी और नेपाली कांग्रेस का अधिवेशन हो रहा था, तब मैं पहली बार वहां गया था। 1954 में नेपाल संदेश का प्रारंभ किया गया था। वह साप्ताहिक थी। बीच में दैनिक किया गया था। किंतु, फिर उसे साप्ताहिक ही कर दिया गया। नेपाल के तराई क्षेत्रों व बिहार तथा उ०प्र० के नेपाल की सीमा से लगे क्षेत्रों में उसका अच्छा प्रसार है। मैं ही उसका संपादक तब से आज तक हूं।

प्रेरणा का स्रोत है बालेश्वर जी की स्मृति

आशुतोष

1986 की बात है। हमारे एक परिचित कार्यकर्ता आगरा के एक प्रमुख स्थानीय समाचार पत्र में वरिष्ठ उप संपादक थे। मैंने एक लेख लिखा और छपने के लिये उन्हें दे दिया। संयोग से, उसी विषय पर एक बड़े राजनेता ने भी लेख लिखा। समाचार–पत्र ने नेताजी का लेख छापा, मेरा नहीं। यही स्वाभाविक था। मेरा लेख नहीं छपने पर मुझे क्रोध आना भी उतना ही स्वाभाविक था।

उसी दिन शाम को समाचार पत्र की प्रति लेकर और नेताजी के लेख की त्रुटियों पर लाल निशान लगा कर मैं संपादक जी के घर पहुंच गया। उन्होंने मुझे अनेक प्रकार से समझाने की कोशिश की किन्तु मैं समझने के लिये तैयार नहीं था। मैं तब तक आजादी के पहले के कुछ पहुंचे हुए संपादकों की जीवनी पढ़ चुका था और मन में बिठा चुका था कि महत्व तथ्य और सत्य का ही है, व्यक्ति का नहीं। मैं यह तर्क स्वीकार ही नहीं कर सकता था कि किसी राजनेता का अधकचरा लेख छापने के लिये किसी भी अन्य लेख को रद्दी की टोकरी में डाला जा सकता है।

अंततः उन्होंने मुझसे पीछा छुड़ाना ही उचित समझा। उन्होंने अपने मुख्य संपादक की समझ पर सवाल उठाते हुए मुझे बताया कि आपके लेख की कीमत तो दिल्ली में 'युगवार्ता' के संपादक श्री बालेश्वर अग्रवाल ही समझ सकते हैं। आप उन्हें यह लेख भेज दीजिये। उन्होंने ही युगवार्ता का पता भी दिया। मैंने उन्हें अपना लेख भेज दिया।

लगभग एक महीने बाद मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा जब उन्होंने 30 पत्र–पत्रिकाओं की कतरनें मुझे भेजीं, जिनमें वह लेख छपा था। इसके बाद तो लेख लिखने और युगवार्ता को भेजने का क्रम ही चल पड़ा। छः माह बाद एक दिन पिछले सारे लेखों के संयुक्त पारिश्रमिक के रूप में जब 60 रुपये का मनीऑर्डर आया तो मैं गद–गद हो उठा। मैंने उन 60 रुपयों का सर्वश्रेष्ठ उपयोग यही समझा कि दिल्ली चलकर बालेश्वर जी के दर्शन किये जायें।

बालेश्वर जी भगत सिंह मार्केट के अपने केबिन में बैठे थे। जब मैंने अपना परिचय दिया तो उन्होंने मेरा बहुत उत्साहवर्धन किया। उनकी कल्पना में था कि इतना नियमित लिखने वाला कोई प्रौढ़ व्यक्ति होगा। मैं ऊर्जा से भर कर लौटा। कुछ समय बाद मैं विद्यार्थी परिषद के पूर्णकालिक के रूप में काम करने लगा और नियमित लेखन छूटता गया। साथ ही बालेश्वर जी से संवाद भी छूट गया।

वर्ष 2002 में मैं उनसे पुनः मिला। इस बार मैं हिन्दुस्थान समाचार के समाचार संपादक के रूप में उनसे मिला था। वे हिन्दुस्थान समाचार को पुनः प्रारंभ करने के विचार से सहमत नहीं थे। उन्हें लगता था कि बहुत समय बीत चुका है और संवाद समिति की भूमिका अब बहुत सिमट गयी है। अतः अब इसका कोई बहुत उपयोग नहीं होगा। उन्होंने अपने मत को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया, यद्यपि मुझे इसके लिये शुभकामना भी दी। वे अंतर्राष्ट्रीय सहयोग परिषद के काम में व्यस्त थे। एक दशक में मेरी उनसे कुछ ही भेंट हुईं, वे भी अत्यंत संक्षिप्त और औपचारिक।

दस वर्ष बाद हमारी पुनः लम्बी भेंट हुई जब 2011 में मैं जम्मू–कश्मीर अध्ययन केन्द्र से जुड़ा। संयोग से हमें कार्यालय भी प्रवासी भवन में ही मिला जिसके कारण उनसे अक्सर मिलना होता रहा। वे थोड़ा बीमार थे किन्तु मानसिक रूप से चैतन्य थे। इस बार उन्होंने मुझे अंतर्राष्ट्रीय सहयोग परिषद का सदस्य बनने के लिये कहा। संभवतः उनकी इच्छा रही होगी कि मैं परिषद में अधिक सक्रियता से काम करूं, किन्तु वे स्वयं ही अस्वस्थ रहने लगे।

अंतिम समय में वे अपने कमरे में ही रहते थे। मैं कभी–कभी उनके पास मिलने जाता था। वे सदैव जम्मू–कश्मीर अध्ययन केन्द्र के काम के विषय में पूछ–ताछ करते थे। साथ ही अंतर्राष्ट्रीय सहयोग परिषद की गतिविधियों की जानकारी देते थे। कई पुरानी घटनाओं को स्मरण करते, अनेक ऐसे लोगों के नाम बताते जो हमारे काम में सहयोगी हो सकते थे। यह क्रम प्रायः उनके अंतिम दिनों तक चला, जब तक कि वे बात करने में असमर्थ नहीं हो गये। कश्मीर टाइम्स समाचार–पत्र उनके पास डाक से आता था। वे उसे नियमित पढ़ते और पढ़ने के बाद कुछ विशेष घटनाओं को रेखांकित करके मुझे भेज देते। यही नहीं, उनका सहायक यदि किसी दिन उसे पहुंचाना भूल जाता था तो उसे डांटते भी थे।

मुझे स्मरण आता है कि वे पीड़ा से बहुत तेज आवाज में कराहते थे किन्तु जैसे ही कोई संगठनात्मक विषय लेकर उनके पास पहुंचता था, उनका कराहना बंद हो जाता था और पूरी तरह वे उस चर्चा में डूब जाते थे। सचमुच वे ऐसे कर्मयोगी थे जिन्होंने जीवन भर कर्म किया और अंत में एक बड़ी रेखा खींच कर चले गये। भारतीय भाषाओं की मीडिया में उनके योगदान का साक्षी उनका लेखन ही नहीं बल्कि पत्रकारों की वह लम्बी श्रृंखला है जिन्हें उन्होंने गढ़ा था। भारत की मौलिक समझ के साथ मीडिया और अंतर्राष्ट्रीय संबंध, दोनों ही क्षेत्रों में उन्होंने नये आयाम स्थापित किये। भारतीय भाषाओं को सशक्त कर सुदूर गांवों को राष्ट्रीय मानचित्र पर स्थान दिलाया तो दूसरी ओर विश्वमालिका में भारत को उसका योग्य स्थान प्राप्त हो, इसके लिये प्रयत्नशील रहे। आज जब वे हमारे बीच नहीं हैं, उनकी स्मृति हम सबके लिये प्रेरणा का स्रोत बनेगी।

मारक मनोरंजन का सीजन-6

जयप्रकाश सिंह

अपने प्रतिपक्षी को फिजूल की चीजों में उलझा देना खुद को उलझन से बचाए रखने की सबसे बेहतर रणनीति मानी जाती है। जनाक्रोश की भ्रूणहत्या के लिए यह सर्वाधिक सफल तकनीक है। शायद, इसी कारण मानवीय इतिहास के प्रत्येक कालखंड में शासक वर्ग द्वारा इस तकनीक के उपयोग के उदाहरण मिल जाते हैं।

व्यवस्था द्वारा इसका उपयोग दुनिया के प्रत्येक कोने में किया गया है और आश्चर्यजनक रुप से यह हर जगह समान रूप से सफल रही है। अध्ययन से एक बात और स्पष्ट होकर सामने आती है कि व्यवस्था लोगों के आक्रोश को पथभ्रष्ट करने के लिए मनोरंजन के क्षेत्र का चुनाव करती है। अवैध नीतियों पर प्रश्नचिन्ह लगने, सत्ता परिवर्तन को वैधता प्रदान करने अथवा सत्ताविरोधी लहर के प्रशमन के समय यह देखा जाता है कि यकायक मनोरंजक कार्यक्रमों की बाढ़ आ जाती है।

मनोरंजन के जरिए लोगों का ध्यान सत्ता प्रतिष्ठान की गतिविधियों से हटाने का सबसे अच्छा उदाहरण रोमन साम्राज्य में देखने को मिलता है। इस साम्राज्य में लंबे समय तक लोगों के मनोरंजन के लिए एक मारक परंपरा जीवित रही। मनोरंजन की इस परंपरा में दो योद्धा (**Gladiator**) एक अखाड़े में तब तक लड़ते थे, जब तक कि उनमें से किसी एक की जान न चली जाए। कभी—कभी नरहत्या पर आधारित यह जीवंत मनोरंजन दो समूहों के बीच भी हुआ करता था और कभी किसी यो़द्धा और खतरनाक पशु के बीच। पहली शताब्दी में यह खेल अपने चरम पर पहुंच गया था। यद्यपि यह बहुत खर्चीला खेल था, फिर भी लोग इसके आस्वादन के प्रलोभन से खुद को रोक नहीं पाते थे।

लोग अपना सब कुछ दांव पर लगाकर इस खूनी मनोरंजन को देखते थे। इसके कारण रोम की आर्थिक गतिविधियों पर बहुत दुष्प्रभाव पड़ रहा था और उत्पादन ठप होने के कगार पर पहुंच गया। लेकिन इस मनोरंजन के कार्यक्रमों में लगातार बढोतरी हो रही थी क्योंकि राजनीतिक लोगों के लिए यह बहुत मुफीद बैठ रहा था। कौन कितने योद्धाओं का मालिक है, इससे उसके राजनीतिक रुतबे का पता चलता था। धनिकों के लिए यह एक बड़ा व्यापार बन गया था और प्रशिक्षकों के लिए एक स्वर्णिम अवसर। सबसे ज्यादा लाभ तो सत्तासीन राजनीतिक वर्ग के लिए था। वह इस खेल के जरिए लोगों का ध्यान न केवल अपनी करतूतों से हटाने में सफल हो रहे थे, बल्कि अपनी छवि को बेहतर और बड़ा भी बना रहे थे।

आज दो हजार सालों बाद सोचने पर यह लगता है कि कैसे लोग थे, जो लोगों की हत्या को मनोरंजन मानकर मौज कर रहे थे। लेकिन आज भी परिस्थिति और मनःस्थिति में भी बहुत ज्यादा बदलाव नहीं आया है। मनोरंजन के कुछ पैशाचिक यज्ञ आज भी किए जा रहे हैं और नरबलि की आहुतियां धड़ल्ले से दी जा रही हैं। यह अलग बात है कि मनोरंजन की दुनिया में हम इतने व्यस्त और अपनी आदतों से इतने पस्त हैं कि उन नरकंकालों को देख नहीं पा रहे हैं, जो इन यज्ञवेदियों के चहुंओर बिखरी पड़ी हैं।

मारक मनोरंजक से जुड़े खेल के प्रारूप जरूर बदले हैं, लेकिन खेल की प्रवृत्तियों में कोई बदलाव नहीं हुआ है। मीडिया के उभार और प्रभाव के कारण अब स्थितियां अधिक जटिल और घातक हो गई हैं। नैसर्गिक प्रवृत्तियों के प्रवाह के साथ बहना जनसामान्य को सदैव भाता है। पहले इस बहाव की एक स्वाभाविक स्थिति होती थी। अब यह बहाव मीडिया के कारण खतरे के बिंदुओं को स्पर्श कर रहा है क्योंकि छवियों और शब्दों की मस्तिष्क पर चौबीसों घंटे होने वाली बमबारी के कारण प्रवृत्तियां उद्दाम वेग से बहने लगती हैं और यह उद्दाम वेग सही—गलत के विवेक को मटियामेट कर देता है।

महात्मा गांधी कहा करते थे कि बढ़ी हुई आवश्यकताओं की दासता गुलामी का निकृष्टतम रूप है। दिखावटी जरुरतों का दास बनने पर व्यक्ति के भीतर न केवल सत—असत का विवेक नष्ट होता है बल्कि वह सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से संवेदनशून्य भी हो जाता है।

भारतीय मीडिया जिन प्रवृत्तियों के वशीभूत होकर काम कर रही है, उसके कारण मारक मनोरंजन को लोकप्रियता मिल रही है और लोगों की आवश्यकताओं में अतिशय विस्तार हो रहा है। इसके कारण एक अजीब प्रकार के आदमखोर समाज का निर्माण हो रहा है।

यह आदमखोर समाज कलियुगी धर्म के कलंकी देवताओं की उपासना करता है। पहले इन देवताओं का अवतरण कभी—कभी हुआ करता था और भक्तों को देवताओं की शक्तियों का प्रदर्शन देखने के लिए लंबे समय तक इंतजार करना पडता था। इससे देशभर में फैले भक्तहितकारी मंडल को बहुत कष्ट हुआ। उनसे भक्तों का यह कष्ट देखा नहीं गया। भक्तों का कष्ट दूर करने और देवताओं का दर्शन सुलभ बनाने के लिए इस मंडल ने अपनी पूरी क्षमता का उपयोग करते हुए सन् 2008 में अपनी संपूर्ण दो महीने तक चलने वाले धार्मिक कार्यक्रमों की रुपरेखा बनाई। भक्तों का भक्तिकर्म नीरसता से ग्रस्त न हो, रसमयी बना रहे इसके लिए गीत—संगीत को भी इस धार्मिक कार्यक्रम का अभिन्न हिस्सा बनाया गया, कुछ अप्सराओं को भक्तिकर्म में सहयोग पहुंचाने के लिए

स्वर्गलोक से बुलाया गया। इनका काम भक्ति के महाआयोजन को नृत्य और संगीत के जरिए अधिक भक्तिमय बनाना था।

इस भक्तदर्शन अमृत वर्षा कार्यक्रम की लोकप्रियता इतनी बढ़ी कि सन् 2013 में मंडल ने देवताओं के दर्शन के अवसरों को बढ़ाकर 76 कर दिया। अब इस मंडल के सदस्यों को कौन बताए कि भक्ति में रस समाहित होता है, उसे बाहर से इंजेक्ट नहीं करना पडता। इतिहास में जब कभी भी भक्ति को जबरदस्ती रसमय बनाने की कोशिश की गई है तो परिणाम व्यवस्थागत स्खलन के रूप में ही सामने आता है।

दूर बैठा रावण भक्तों, देवताओं और भक्तहितकारी मंडल के इस अजीब महाआयोजन का अध्ययन बहुत बारीकी से कर रहा था। उसने सोचा कि देवताओं से लड़ाई बहुत बार लड़ चुका हूं, धमकाता तो रहता ही हूं, लेकिन लड़ाई और धमकाने की प्रक्रिया बहुत घर्षण भरी है। कई बार खुद को भी क्षति उठानी पड़ती हैं। क्यों न इस बार देवताओं का उपयोग कर अपना स्वार्थ सिद्ध किया जाए। प्रतिद्वंद्वी से लड़ाई लडने के बजाय उसका उपयोग कर लेना सबसे बडी रणनीतिक कुशलता मानी जाती है। इसलिए उसने इस बार भक्तिहितकारी मंडल के लोगों के सामने इस बात का प्रस्ताव रखा कि वह भी भक्तों और देवताओं के लिए अपनी तरफ से कुछ सुविधाएं देना चाहता है। वह भक्ति के कार्यक्रमों को और भी अधिक रसमय बनाना चाहता है, कुछ रात्रि पार्टियों के आयोजन की इजाजत चाहता है, हर देवता के लिए व्यक्तिगत अप्सराओं की आपूर्ति को सुनिश्चित करना चाहता है।

मंडल के सदस्य इन सुझावों को सुनकर भावविह्वल हो गए। उन्होंने इन सुझावों के लिए हृदय से कृतज्ञता ज्ञापित की और तुरंत ही इन सुझावों को क्रियान्वित भी कर दिया। कुछ हैसियतदार लोग इन कार्यक्रमों का प्रत्यक्ष रसास्वदन ले रहे थे और बहुत बड़ी संख्या में लोग मीडिया के जरिए सीधा प्रसारण देख रहे थे। हर जगह मदमस्ती छा गई। आयोजक, परामर्शदाता, देवता और भक्त सब महामस्त हो गए। मस्ती इस कदर छायी कि बाहर क्या हो रहा है, कौन देश की सीमा में घुस गया, किस देशभक्त की हत्या कर दी गई, किसने कोयले की कालिख को अपनी चतुराई से सोने में बदल दिया, कहां पर लोग पानी के बिना तरस रहे हैं, कौन लोग हैं जो दाल की जुगत नहीं भिड़ा पाने के कारण असमय ही काल के गाल में समाते जा रहे हैं, कितनी बड़ी संख्या में लोगों ने कर्ज न चुका पाने के कारण आत्महत्या कर ली, इनकी तरफ किसी का ध्यान ही नहीं गया।

समाज के संवेदनशील लोगों का एक छोटा सा हिस्सा अपने अध्यवसाय से इस तरह के तथ्यों से परिचित हो जाता था। लेकिन उनमें से भी बड़ी संख्या भक्ति के रसास्वदन से खुद को वंचित नहीं रखना चाहती थी, इसलिए वह सब कुछ जानकर भी अकर्मण्य बने रहे। समाज के शेष तबके तक तो यह खबरें पहुंच ही नहीं पा रही थीं क्योंकि तत्कालीन मीडिया दिन रात भक्तिरस के इस महाआयोजन की ही कवरेज कर रहा था। आम आदमी को लगता कि पूरी दुनिया, पूरा देश इस समय भक्तिरस से सराबोर हुआ जा रहा है, इसलिए उसका भी इस भक्तिगंगा में डुबकी लगाना जरुरी है। अब विशेषज्ञ इस बात को मानने लगे हैं कि मीडिया महाआयोजन की कवरेज से देश की चेतना को मदहोश करने में योगदान कर रहा है, वह आसन्न संकटों की चेतावनी से जनचेतना को झंकृत करने की अपनी भूमिका से हट रहा है।

निश्चित तौर पर राजनीतिक और आर्थिक प्रभुओं की इच्छा जनता को मदहोश करने की ही है, लेकिन उनके इस एजेंडे को पूरा करने का काम मीडिया और मीडिया से जुड़े लोग ही कर रहे हैं। इसीलिए अब जो आदमखोर समाज बन रहा है, जो असंवेदनशील समाज बन रहा है, उसके लिए सर्वाधिक जिम्मेदार मीडिया को ही माना जाना चाहिए। इस पूरे आयोजन को सफल बनाने में सक्रिय भूमिका मीडिया भी निभा रहा है और वह खुद भी इस कार्यक्रम से लाभान्वित हो रहा है। इसका अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि कंपनियों ने आईपीएल के सामने अपना नाम लिखाने के लिए भारी–भरकम राशि दी। पेप्सी ने पांच वर्षों की टाइटल स्पांसरशिप के लिए बीसीसीआई को 396 करोड रुपए दिए थे। टाइटल स्पांसरशिप भी विज्ञापन का ही एक प्रकार है। आईपीएल के प्रसारण अधिकार लगभग 8700 करोड रुपए में सेटमैक्स को दस वर्षों के लिए बेचे गए। इस कार्यक्रम की ब्रांड वैल्यू को बढ़ाने के लिए आईपीएल के कर्ताधर्ताओं ने चैनलों को आईपीएल के विज्ञापन दिए। मीडिया मैनेजमेंट के लिए सभी पुराने और लोकप्रिय खिलाडियों को पेंशन के नाम पर पैसे बांटे गए ताकि आईपीएल का कोई आलोचक ही न रहे। कुल मिलाकर मीडिया और आईपीएल का गठजोड बहुत व्यापक, गहरा और एक दूसरे को लाभ पहुंचाने वाला है। अब यह गठजोड़ देश, समाज और व्यक्ति सभी का गला घोटने पर उतारु है।

आईपीएल का मनोरंजन एक रक्तरंजित मनोरंजन है क्योंकि यह एक ऐसे समाज को गढ़ रहा है, जो सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से परम असंवेदनशील है। यह असंवेदनशीलता हमको हमारे परिवेश से काटती है, प्राथमिकताओं को बाजारु बनाती है और नर को नरपशु में तब्दील करती है। हैरत की बात यह है कि इस मनोरंजन के कारण न केवल लोग दूसरों के खून की कीमत को भूल गए हैं, बल्कि खुद अपने शरीर में प्रवाहित होने वाला रक्त भी उनके लिए बहुत सस्ता प्रतीत होने लगा है। इसमें प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष सहभागिता करने वाला प्रत्येक व्यक्ति खुद अपने हाथ की नसों को काट कर आत्महत्या करने पर उतारु है। यह सहभागिता लोकप्रियता को निर्धारित करती है, अन्य लोगों को प्रभावित करती है, जिससे सट्टे का बाजार चलता है। सट्टे के बाजार का रिमोट कंट्रोल दुबई और कराची में बैठे देश के दुश्मनों के पास है और उन्हीं तक इस बाजार का फायदा भी पहुंचता है। कहीं हम आइपीएल मैच देखकर भारत में चलने वाले देशविरोधी, धर्मवरोधी, आतंकवादी गतिविधियों में अपना योगदान तो नहीं दे रहे हैं ? यही प्रश्न मीडिया और मीडियाकर्मियों को भी प्रकारांतर से 'कवरेज के संदर्भ में' अपने से पूछना चाहिए क्योंकि स्वभूमिका के बारे में सबसे सटीक मार्गदर्शन अंतःकरण ही कर सकता है।

जिन्हें इंट्रो लिखना नहीं आता, वे पत्रकारिता पढ़ाते हैं -प्रो. शिवाजी सरकार

आपातकाल के दौरान पत्रकारिता की शुरूआत करने वाले शिवाजी सरकार से उनके पत्रकारीय अनुभवों के संदर्भ में हमने उनसे विस्तारपूर्वक बात की। उन्होंने कई वर्षों तक मुख्यधारा की पत्रकारिता में सक्रिय रहने के पश्चात अध्यापन की ओर रूख किया। प्रस्तुत हैं उनसे बातचीत के चयनित अंश–

किन कारणों से आप पत्रकारिता के क्षेत्र की तरफ उन्मुख हुए। पत्रकारिता में प्रवेश कैसे हुआ और इस क्षेत्र में अब तक प्रमुख पड़ाव क्या रहे ?

मेरे सभी मित्र सरकारी नौकरी के लिए प्रयासरत थे और लगभग सभी किसी न किसी दफ्तर में समा गए। आपातकाल का दौर था, कहीं कुछ सूझ नहीं रहा था। इलाहाबाद संग्रहालय के निदेशक डा. एसवी काला ने एक दिन बुलाया और मुझे इलाहाबाद संग्रहालय में सहायक निदेशक के तौर पर काम करने को कहा। मैं उनके साथ काम करने लगा, पर दो–तीन महीनों में मैं वहां की आरामतलबी की नौकरी से ऊबने लगा। तीन महीने बाद मैं नौकरी छोड़कर उत्तर प्रदेश के प्रमुख अंग्रेजी दैनिक नेशनल हेराल्ड में अप्रेंटिस हो गया। यह एक सुनहरा मौका था। मेरे वरिष्ठ ललित रायजादा और स्थानीय संपादक सीएन चितरंजन और संपादक चेलापति राव ने मुझे पत्रकारिता के गुर सिखाए और आगे बढ़ने में मुझे बहुत मदद की। आपातकाल में सरकार के कामकाज को बहुत करीब से देखा। 1977 के चुनाव में चुनाव कवरेज की बारीकियों को समझा। इसी बीच मेरा तबादला लखनऊ कर दिया गया। लखनऊ में पहले दिन चितरंजन साहब ने कहा तुम शहर को जानते नहीं हो। आज तुम्हें कुछ नहीं करना है। मैं शहर में अपने कुछ मित्र थे, उनसे मिलने चला गया। उन दिनों केंद्र में जनता पार्टी की सरकार बन चुकी थी और उत्तर प्रदेश में विधानसभा चुनावों की तैयारी चल रही थी। मेरे मित्रों ने मुझे बताया कि जनता पार्टी के प्रमुख नेता राजमंगल पांडे को जनता पार्टी के सदस्यों ने पीटा है। वे ही मुझे उनके घर ले गए। सारी जानकारी लेकर देर रात में मैं दफ्तर पहुंचा। चितरंजन जी को मेरे वरिष्ठ सहयोगी रायजादा ने फोन किया और मुझसे बात करवाई। उन्होंने मुझे खबर लिखने के लिए कहा। दूसरे दिन वह अखबार के पहले पृष्ठ की लीड खबर थी, अन्य किसी अखबार में यह खबर नहीं थी। दूसरे दिन चितरंजन जी ने मेरी बहुत तारीफ की और मुझे जनता पार्टी कवर करने के लिए कहा। कुछ दिनों में प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई लखनऊ आये और वहां भी कवरेज करने का मौका मुझे दिया गया। यह घटना पत्रकारिता के मेरे शुरूआती दिनों में बहुत महत्वपूर्ण साबित हुई और मुझे वरिष्ठ पत्रकारों के साथ महत्वपूर्ण बीट की जिम्मेदारी दी गई। तमाम परेशानियों के बावजूद आज तक मैंने पत्रकार के रूप में जो भी काम किया, उसमें संतोष है।

हिंदी पत्रकारिता बनाम अंग्रेजी पत्रकारिता की बहस अपने देश में चलती रही है। अंग्रेजी भाषा की पत्रकारिता पर यह आरोप लगता है कि वह सांस्कृतिक दृष्टि से असंवेदनशील है। आप इस पूरी बहस को किस रूप में लेते हैं ?

मैं यह नहीं मानता कि अंग्रेजी पत्रकारिता सांस्कृतिक दृष्टि से असंवेदनशील है। अनेकों सांस्कृतिक विवेचन अंग्रेजी पत्रकारिता के कारण ही हुए। वस्तुतः यह विडंबना ही रही कि आज से कुछ वर्षों पूर्व तक हिंदी पत्रकारिता, अंग्रेजी पत्रकारिता का ही अनुसरण करती रही। देश की कई अन्य भाषाओं ने जैसे बांग्ला, तमिल, गुजराती या मराठी पत्रकारिता ने अपनी अलग जगह बनाई। पर हिंदी का दुर्भाग्य रहा कि दशकों तक सभी बड़े बैनर की हिंदी पत्रिकाएं अंग्रेजी के अनुवादित संस्करण के रूप में ही प्रकाशित होती रहीं। मैं जब कानपुर में नॉर्दन पत्रिका का स्थानीय संपादक था और वहां नए प्रतिमान स्थापित करने का प्रयास किया तो मुझे देखकर आश्चर्य हुआ कि हिंदी पत्रिकाएं हमारा अनुसरण करने लगीं। लगभग सन् 2000 के आसपास हिंदी के कुछ नए चैनल उभरे

और उन्होंने हिंदी पत्रकारिता को एक अलग जगह दिलाने की कोशिश की। मैं समझता हूं कि हिंदी के साथ एक विडंबना अभी तक रही है कि हिंदी का कोई स्वतंत्र प्रकाशन समूह पहले नहीं था, सारे अखबार अंग्रेजी समूह ने ही निकाले थे। धर्मयुग भी उन्होंने ही निकाला और साप्ताहिक हिंदुस्तान भी। दुर्भाग्य ही रहा कि धर्मयुग को थोड़े से मुनाफे के लिए बंद कर दिया गया। यह हिंदी पत्रकारिता और साहित्य के लिए अतुलनीय क्षति थी। आज भी कोई हिंदी की पत्रिका धर्मयुग की बराबरी नहीं कर सकती है। हिंदी समाचार समूहों द्वारा आज भी कोई स्तरीय पत्रिका नहीं निकाली जा रही है। मेरे ख्याल से बांग्ला में आनंद बाजार पत्रिका समूह द्वारा सबसे अच्छी स्तरीय साहित्यिक पत्रिका 'देश' प्रकाशित की जाती है। इसका बांग्ला साहित्य की प्रगति में बड़ा योगदान है। हिंदी में भी ऐसा होना चाहिए। अगर कोई चाहे तो मैं उनकी मदद कर सकता हूं।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया के कारण पत्रकारिता के क्षेत्र में संभावनाएं और चुनौतियां दोनों एक साथ पैदा हुई हैं। पत्रकारिता क्षेत्र में उभरी नवीन संभावनाओं का दोहन कैसे किया जा सकता है ?

वैश्वीकरण को भारतीय पत्रकारिता ने बिना किसी समालोचना के सामान्य रूप से स्वीकार किया। कारपोरेट समूह के लिए यह उपलब्धि रही। जो कुछ पत्रकार इसका विरोध करते रहे, उन्हें परेशान किया गया, नौकरी से निकाला गया और 'प्रतिक्रियाशील व विकासविरोधी' कहा गया। यह पत्रकारिता का दुर्भाग्य रहा। 15 वर्ष पूर्व इन आलोचकों की भविष्यवाणियां सच होती दिखाई पड़ रही हैं। उन्होंने खाद्य मूल्य संकट की भविष्यवाणी की थी, उन्होंने कहा था कि भारत से पूंजी का पलायन होगा, नई नौकरियों के अवसर समाप्त होंगे। उन्होंने भारत में ही भारतीयों के दोयम दर्जे के नागरिक होने की आशंका जाहिर की थी। दुर्भाग्य से आज यह सब सच होता दिख रहा है। उन आलोचकों ने भूमि सीलिंग कानून को समाप्त करने, श्रमिकों की अनदेखी करने तथा देश का ठेका कंपनियों को देने का विरोध कर इसकी दूरगामी परिणति की ओर इंगित किया था। आज वह सब सच हो रहा है, पर यह सुनने को कोई तैयार नहीं है। हमें 1991 की 'मनमोहनोमिक्स' को विदा कर स्वतंत्र सोच कायम करने की आवश्यकता है। हमें अपनी अर्थनीति को पश्चिम की नीति से अलग स्थापित करने की आवश्यकता है। राजनीति, कारपोरेट साम्राज्यवाद से प्रभावित है और पत्रकारिता अपनी सोच को परिष्कृत नहीं कर पा रही है। नई सोच में देश की अर्थव्यवस्था को देश की परिस्थितियों के अनुरूप ढालने की जरूरत है। संपादक की व्यवस्था कमजोर होने से पत्रकारिता को नई दिशा देने वालों की कमी हो गई है। मैनेजर पत्रकारिता की दिशा तय कर रहे हैं। मुनाफा सर्वोपरि है। पत्रकारिता या देश की चिंता किसी को कम ही रह गई है। यह चुनौती है। मैं मानता हूं कि पुनः पत्रकारिता अपना ध्येय का खुद निर्णय करने में सफल होगी, थोड़ा समय और लग सकता है।

पत्रकारिता के उद्देश्य के बारे में अलग–अलग लोगों के भिन्न–भिन्न विचार हैं। वर्तमान दौर में भारतीय पत्रकारिता का उद्देश्य क्या होना चाहिए। वे कौन से मुद्दे हैं, जिन पर आज की मीडिया को अपना ध्यान केंद्रित करना चाहिए।

जैसा मैंने कहा कि पत्रकारिता का उद्देश्य स्वतंत्र सोच को स्थापित करना है और होना चाहिए। पेड न्यूज, विज्ञापन आधारित न्यूज, एडवर्टोरियल आदि समाचार समूहों को आर्थिक लाभ तो पहुंचा रहे हैं, लेकिन कई प्रकार के समझौते करने के बाद। पत्रकारिता के व्यवसाय में भी लाभ आवश्यक है, लेकिन लाभ के लिए पत्रकारिता को स्टेनोग्राफी में या किसी दल, व्यक्ति या कंपनी का मुखपत्र नहीं बनना चाहिए। पत्रकारों की माली हालत इतनी खराब है कि वह इन बहसों में खुलकर भागीदारी करने से डरते हैं। आज यदि देश में सबसे कम वेतन यदि किसी को मिलता है, तो वे पत्रकार हैं। इससे पत्रकारिता का स्वातंत्र्य समाप्त नहीं भी हो तो कम तो हो रहा है और देश के लिए संकट के बादल छा रहे हैं। यह न तो देश के लिए सही है और न ही अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए। आज स्वतंत्र अभिव्यक्ति का स्थापन कैसे हो, इसका विवेचन करने की तीव्र आवश्यकता है।

पत्रकारिता प्रशिक्षण में तेजी से विस्तार हो रहा है, लेकिन यह भी देखा जा रहा है कि यह प्रशिक्षण गुणवत्तापूर्ण मानव संसाधन नहीं पैदा कर पा रहा है। आप इसका क्या कारण मानते हैं ?

पत्रकारिता का प्रशिक्षण सामयिक नहीं हो रहा है। जिस प्रकार की व्यवस्था यूजीसी व कुछ एकेडमिशियन ने अपना वर्चस्व बनाने के लिए की है उसमें पत्रकारिता से जुड़े लोगों को शिक्षण व्यवस्था से अलग करने का सतत प्रयास होता रहता है। जिन्होंने कभी एक इंट्रो भी नहीं लिखा है वे पत्रकारिता के लेखन, आचार संहिता एवं जटिल विषय पढ़ाते हैं। यूजीसी की व्यवस्था में विषय के ज्ञान का महत्व नहीं है। जो सबसे कमजोर विद्यार्थी होते हैं या रट्टू तोता, वे यूजीसी नेट पास कर लेते हैं। क्या इससे पत्रकारिता का भला हो सकता है ? समाचार से जुड़े प्रोफेशनल शिक्षण को सामयिक तो नहीं बनाते हैं, पर यूजीसी यूजीसी की व्यवस्था को सुधारने का भी कोई प्रयत्न नहीं करते हैं। क्या कोई बता सकता है कि विश्वविद्यालय में पत्रकारिता की शिक्षा देने के लिए पीएचडी

की क्या आवश्यकता है। एक पत्रकार सामान्य रूप से रोज खबर लिखने के लिए जो शोध करता है, वह पर्याप्त होता है और सीमित समय में किया जाता है। कई वर्षों में किए जाने वाले थीसिस न तो प्रासंगिक होते हैं और न ही कोई विशेष गुणवत्ता रखते हैं। पत्रकारिता के शिक्षण को उन्नत करने के लिए यूजीसी उत्तरदायी है, पर वह घिसे–पिटे तरीके से जो कर रहा है, उससे पत्रकारिता में शिक्षा के लिए अनुपयोगी व्यक्ति ही ज्यादा आ रहे हैं। शिक्षकों की ऐसी योग्यता निर्धारित की गई है कि नामी पत्रकार या संपादकों को विश्वविद्यालय भाषण देने के लिए बुलाते हैं। पर यदि वे वहां नौकरी करने की इच्छा जताते हैं, तो कहा जाता है कि 'आपकी योग्यता नहीं है'। यही सबसे बड़ी विडंबना है। फैकल्टी की योग्यता उनके कर्मों के आधार पर निर्धारित होनी चाहिए, न कि तथाकथित डिग्री जिसे कई प्रकार से मैनेज किया जाता है।

आईपीएल के सीजन–6 की मीडिया कवरेज और उसमें हुए स्पाट फिक्सिंग की कवरेज को आप किस रूप में देखते हैं ?

वैश्वीकरण की प्रक्रिया में आज सांस लेना भी लाभ और नुकसान के सौदे के रूप में देखा जाता है। इन हालातों में खेल को ही नहीं, शिक्षण व्यवस्था को भी दान के रूप में नहीं प्रॉफिट के लिए, शोषण के रूप में देखा जाता है। आईपीएल शुरू से ही व्यावसायिक अनाचार की उपज रहा है। इसकी तो गहरी जांच होनी चाहिए कि कोई टीम 200 करोड़ रूपए में खरीदी या बेची जाती है, तो वह अपना निवेशित धन कैसे वसूल पाती है। टिकटों की बिक्री या विज्ञापनों से तो यह संभव नहीं है। फिर कौन पैसे लगा रहा है और कैसे लगा रहा है, इसकी जांच होना जरूरी है। पर इसमें मीडिया को भी जब कुछ मिल जाता है तो इसकी जांच कौन करे ? आज तो अनाचार ही आचार संहिता बना रहा है। वैसे आईपीएल एक तमाशा है। मीडिया, खासकर टीवी इसकी कवरेज न करे तो इसी अकाल मौत हो जाएगी। आईपीएल की हर कवरेज का निर्णय फिक्सिंग करने वाले लेते हैं। इसकी फिक्सिंग की खबर में भी अनेकों प्रश्न रह जाते हैं। कई खिलाड़ियों और बीसीसीआई बोर्ड सदस्यों के व्यवसायों की विस्तृत जांच होनी चाहिए। मीडिया किसी राजनीतिक दल के अध्यक्ष की कंपनी में कोई गड़बड़ी न होते हुए भी उसे ऐसे प्रचारित करती है कि राजनीतिक भूचाल आ जाता है। पर आईपीएल के मामले में आमतौर पर रवैया सबको बचाकर चलने का होता है।

मीडिया में आ रही सभी गिरावटों का ठीकरा बाजार पर फोड़ दिया जाता है। क्या यह सही है कि केवल बाजार के कारण ही मीडिया में गिरावट आ रही है ?

बाजार मीडिया को हर वक्त प्रभावित करता रहा है। मीडिया उस दबाव से टक्कर भी लेता रहा है, पर कुछ वर्षों में मीडिया का काम इतना व्यवसाध्य हो गया है कि बाजार के सामने अगर वे नहीं झुकते हैं तो संकट गहरा जाते हैं। उसके बावजूद मीडिया की सबसे बड़ी ताकत उसका आत्मावलोकन और आत्मसमालोचना ही है। बाजार और विदेशी पूंजी एक संकट है। इससे उभरने के लिए संघर्ष कर के राह निकालनी पड़ेगी। रास्ता आसान नहीं है।

बाजार और राजनीति के दबावों के बीच मीडिया सामाजिक बेहतरी का उपाय कैसे कर सकता है ? गांधी जी पत्रकारिता को जनजागरण और सेवा का साधन मानते थे। अब भी क्या यह संभावनाएं मीडिया से जुड़ी हुई हैं ? क्या मीडिया का उपयोग इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए अब भी करना संभव है ?

गांधीजी का कथन आज भी सही है। यदि पत्रकारिता जनजागरण और सेवा नहीं करेगी तो पत्रकारिता का औचित्य ही समाप्त हो जाएगा। पत्रकारिता का उद्देश्य ही समाज में खुली बातचीत का माहौल बनाना है। यदि इस पर संकट आ रहा है तो यह देश के लिए संकट है। मीडिया के लिए इन उद्देश्यों की प्राप्ति असंभव नहीं है। मीडिया के लिए संसद द्वारा बनाए गए एक नियामक की आवश्यकता है। अखबारों के लिए प्रेस परिषद इस काम को काफी हद तक पूरा करती है। इसलिए अखबारों की गुणवत्ता और टीवी की गुणवत्ता में फर्क भी दिखता है। टीवी ने सबसे बड़ी गलती कोई नियामक न बनाकर की है। उनके एनबीए और दूसरे नियामक ढोंग ही हैं। इसकी वजह से सूचना एवं प्रसाण मंत्रालय मीडिया का पुलिसमैन बनकर उभर आया। आज सरकार जब चाहे प्रसारण बंद करवा देती है या प्रसारण को संशोधित करवा लेती है और सभी टीवी चैनल इस पुलिसमैन के आगे घुटने टेके खड़े हैं। टीवी में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए संसद द्वारा कानून बनाकर नियामक बनना चाहिए। आज यदि टीवी चैनल मंत्रालय के खिलाफ या किसी सरकारी विभाग के खिलाफ शिकायत करना चाहेंगे तो किसे करेंगे ? अखबार तो प्रेस काउंसिल में कर सकते हैं और प्रेस काउंसिल कार्रवाई करती है। यदि जनता या दर्शक किसी टीवी चैनल के खिलाफ शिकायत करना चाहते हैं तो किसे करेंगे और कौन उनके खिलाफ कार्रवाई करेगा? अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए संसद द्वारा एक नियामक बनाए जाने की आवश्यकता है। यह काम प्रेस काउंसिल कानून के संशोधन से भी किया जा सकता है।

(संवाद सेतु टीम)

गांधी के आदर्शों का 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान'

भारतीय संस्कृति, मूल्यों की रक्षा करना हिंदी पत्रकारिता की सीरत है। हिंदी पत्रकारिता अपने शुरूआती समय से ही स्वतंत्रता के महान लक्ष्य को समर्पित रही। स्वतंत्रता संग्राम के लिए जनमानस को तैयार करने में हिंदी पत्रकारिता का महत्वपूर्ण योगदान था।

लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी, गणेश शंकर विद्यार्थी जैसे लोगों ने स्वतंत्रता की देवी की आराधना के लिए पत्रकारिता को माध्यम बनाया। आजादी के पश्चात हिंदी पत्रकारिता के सामने अपनी दिशा को एक बार फिर से निर्धारित करने की चुनौती थी। आजादी की नई सुबह देखने के बाद देश में उत्साह और उम्मीदों का दौर था। पर यह तय करना बाकी था कि देश को किस दिशा में ले जाना है। भारत ने जिन गांधीवादी सिद्धांतों को अपनाकर आजादी की जंग जीती थी, आजादी के बाद वे सिद्धांत कुछ पीछे छूटते प्रतीत हो रहे थे।

गांधी के सपनों का भारत कैसा हो ? राष्ट्र निर्माण की उनकी कल्पना क्या थी, इसी बात को आम आदमी के समक्ष बेहतर ढंग से रखने के लिए गांधी जी के आदर्शों के तहत ही 2 अक्टूबर, 1950 को गांधी जयंती के दिन साप्ताहिक हिंदुस्तान की शुरूआत हुई थी। साप्ताहिक हिंदुस्तान का जन्म आजादी के बाद की हिंदी पत्रकारिता के लिए एक विरल घटना थी। इसका पहला अंक 1 से 7 अक्टूबर का था, जिसका नाम 'बापू अंक' था। साप्ताहिक हिंदुस्तान नाम से पत्र निकालने की कल्पना सन 1936 में हिंदुस्तान टाइम्स संस्थान के तत्कालीन मैनेजिंग डायरेक्टर पारसनाथ सिंह ने की थी, लेकिन वह अपनी इस कल्पना को साकार नही कर सके। इस परिकल्पना को मूर्तरूप प्रदान किया गांधी जी के पुत्र देवदास गांधी ने, जब उन्होंने हिंदुस्तान टाइम्स के मैनेजिंग डायरेक्टर की जिम्मेदारी संभाली। इस प्रकार का पत्र निकालने की आकांक्षा देवदास गांधी के मन में आजादी मिलने के बाद से ही थी। प्रथम अंक से ही महत्वपूर्ण भूमिका में रहे।

बांके बिहारी भटनागर के अनुसार– ''सन 1950 के मध्य में उन्होंने अपनी इच्छा को संकल्प का रूप दिया और दैनिक हिंदुस्तान के संपादक मुकुट बिहारी वर्मा को बुलाकर पत्र की योजना तैयार करने को कहा। आजादी के बाद का भारत संभावनाओं की ओर निहार रहा था और संपूर्ण वातावरण ही आशापूर्ण था, इन आशाओं को सन्मार्ग दिखाने के लिए ही साप्ताहिक हिंदुस्तान की नींव रखी गई थी। विस्मृत होते गांधी के आदर्शों को अपनाने की बात भी थी। साप्ताहिक हिंदुस्तान किस प्रकार गांधी जी के आदर्शों के तहत पत्रकारिता के क्षितिज में उदित हुआ था, इसका उदाहरण उसके पहले अंक में गांधी जी के चित्र के साथ पृष्ठ दो पर 'शाश्वत नियम' शीर्षक से प्रकाशित यह उद्धरण वाक्य थे–

''सत्य ही असत्य को, प्रेम ही क्रोध को, आत्मकष्ट ही हिंसा को शांत करता है। यह शाश्वत नियम संतों के लिए ही नहीं सबके लिए हैं। इसका पालन करने वाले लोग थोड़े भले ही हों, किंतु पृथ्वी के रसनद में समाज को संगठित वे ही रखते हैं न कि ज्ञान और सत्य के विरूद्ध आचरण करने वाले।'' पहले अंक में ही जैनेन्द्र कुमार का लेख भी 'हम कहां और क्यों' शीर्षक से छपा था। गांधी जी के विस्मृत होते आदर्शों के प्रति अपनी व्यथा जाहिर करते हुए **जैनेन्द्र ने लिखा था–**

''गांधीजी के जन्मदिन पर हम विस्मय कर सकते हैं कि इस थोड़े से काल में कि जब गांधीजी शरीरतः हमारे बीच नहीं रहे, हम कहां से कहां आ गए हैं। ऐसा तो हमें मालूम नहीं होता कि हमने गांधी जी को छोड़ दिया है। उनको हम मानते हैं। उनकी नीति को मानते हैं। भरसक उस पर चलने की कोशिश भी करते हैं, लेकिन देखते हैं कि नतीजा पहले जैसा नहीं आता है। तब उत्साह था, अब निराशा है। तब जो अपने को होमने चलते थे, वे ही अब भोगने में बढ़ रहे हैं।''

'साप्ताहिक हिंदुस्तान' की स्थापना जिस दौर में हुई, उस वक्त सरकार की आलोचना की बजाय संभावनाओं की बात अधिक होती थी। इसका कारण शायद यह भी था कि उस वक्त जो राष्ट्र का नेतृत्व कर रहे थे, वे नेता भारत के निर्माण का सपना बुनने वाले भी थे, मात्र शासक नहीं थे। साप्ताहिक हिंदुस्तान की शुरूआत के वर्षों में प्रकाशित राष्ट्रीय नव निर्माण विशेषांकों को इस संदर्भ में देखा जा सकता है। उस दौर में संपादक की भूमिका महत्वपूर्ण होती थी और मालिकों की भूमिका संसाधन उपलब्ध कराने तक ही सीमित थी। बाजार का दबाव कम होने के कारण पत्रकारीय मूल्यों से समझौता करने की तो कोई बात ही नहीं थी। बाजार का दबाव कम होने के कारण प्रतिस्पर्धा भी नहीं थी और प्रतिस्पर्धा की स्थिति थी भी तो बेहतर सामग्री उपलब्ध कराने को लेकर थी। उस दौर की पत्रकारिता में एक विशेषता यह भी थी कि पत्रकारिता और साहित्य में अधिक दूरी नहीं थी। साहित्य के लोग ही प्रायः पत्रकारिता के क्षेत्र में भी सक्रिय थे और पत्र–पत्रिकाओं में भी साहित्यिक रचनाओं को प्रमुखता दी जाती थी। साप्ताहिक हिंदुस्तान में भी साहित्य को प्रमुखता से स्थान दिया जाता था। राष्ट्र के सरोकार ही साप्ताहिक हिंदुस्तान की मुखर आवाज थे। यह समझने के लिए 5 अक्टूबर, 1952 के संपादकीय का अंश दृष्टव्य है–

''पश्चिम की चकाचौंध से अभी भी हम मुक्त नहीं हुए हैं और वहां दिखने वाली प्रगति एवं सफलता मानो उसके अनुसरण की बरबस प्रेरणा कर रही है। रचनात्मक कार्य जिन्हें गांधीजी के समय हमने जाना, उसकी ओर आज मानो हमारी प्रवृत्ति कम है,

मौखिक राजनीति और यंत्रीकरण हमको अधिक आकृष्ट कर रहे हैं। चरखा, खादी और ग्रामोद्योग इसीलिए पनपते हुए नहीं मालूम पड़ते। कृषि के क्षेत्र में भी यंत्रीय प्रयोग बढ़ रहे हैं। यद्यपि खाद्य समस्या और जीवन निर्वाह की समस्या फिर भी कठिन ही बनी हुई है'' इस पत्र की नींव रखने वाले देवदास गांधी थे, परंतु उन्होंने खुद को इसके संपादन दायित्वों से मुक्त रखा। इसका प्रथम संपादक होने का गौरव मुकुट बिहारी वर्मा को प्राप्त हुआ जो उस समय दैनिक हिंदुस्तान के भी संपादक थे। मुकुट बिहारी वर्मा का कार्यकाल पत्र की स्थापना से लेकर 16 अगस्त, 1953 तक रहा।

इसके बाद 23 अगस्त, 1953 को बांके बिहारी भटनागर ने संपादन की जिम्मेदारी संभाली और वह साप्ताहिक हिंदुस्तान के लंबे समय तक संपादक रहे, 16 अक्टूबर, 1966 को वह अपने दायित्व से अलग हो गए। उनके बाद संपादक के रूप में दायित्व संभालने वाले रामानंद दोषी लगभग एक वर्ष तक इस पत्र के संपादक रहे। इसके बाद का दौर साप्ताहिक हिंदुस्तान का स्वर्णिम दौर था, जब 3 दिसंबर, 1967 को मनोहरश्याम जोशी ने संपादन की जिम्मेदारी संभाली। मनोहरश्याम जोशी के संपादन काल में साप्ताहिक हिंदुस्तान ने पत्रकारिता जगत में शीर्ष मानदंड स्थापित किए। मनोहर श्याम जोशी जितने उत्कृष्ट पत्रकार थे, उतने ही सिद्धहस्त साहित्यकार भी थे। कहा यह भी जाता है कि मनोहरश्याम जोशी से पहले और उनके बाद साप्ताहिक हिंदुस्तान के इतिहास में उनकी प्रतिभा के समकक्ष का कोई संपादक नहीं आया। लगभग 15 वर्षों तक संपादन की जिम्मेदारी संभालने के बाद 24 अक्टूबर, 1982 को मनोहरश्याम जोशी ने संपादन के दायित्व से स्वयं को मुक्त कर लिया।

उनके बाद शीला झुनझुनवाला और राजेंद्र अवस्थी ने संपादन की जिम्मेदारी संभाली, लेकिन इनका कार्यकाल संक्षिप्त ही रहा। इसके बाद 27 मार्च 1988 से अंतिम अंक तक मृणाल पांडे ने साप्ताहिक हिंदुस्तान का संपादन किया। अपने अंतिम अंक तक साप्ताहिक हिंदुस्तान अपने घोषित मूल्यों के प्रति अडिग रहा। लेकिन देश में उदारवाद की लहर चलने के बाद सभी पत्र एवं पत्रिकाओं की प्रकृति व्यावसायिक होती गई। इस दौर में आदर्शों की आधारशिला के बजाय पत्रकारिता ने बाजार के सहारे खड़े रहने का प्रयत्न किया।

अखबार अब जनजागरण के लिए नहीं मुनाफे के लिए भी निकाले जाने लगे थे। किंतु, साप्ताहिक हिंदुस्तान बाजार के अनुसार स्वयं को ढाल न सका, यही कारण था कि साप्ताहिक हिंदुस्तान जैसे वैचारिक पत्र को बाजार का आधार नहीं मिला। अंततः तमाम उतार–चढ़ावों के बाद दिसंबर 1992 को साप्ताहिक हिंदुस्तान का प्रकाशन स्थगित कर दिया गया। लंबे समय तक इस पत्र में अपना योगदान देने वाले पत्रकारों–संपादकों के विचारों की पड़ताल करने के बाद यह कहा जा सकता है कि इसके बंद होने के पीछे कोई एक कारण नहीं था। वरिष्ठ पत्रकार और साप्ताहिक हिंदुस्तान से जुड़े रहे **हिमांशु जोशी के अनुसार–**

'असल में मनोहरश्याम जोशी के बाद से हिंदुस्तान का ग्राफ नीचे की ओर जाने लगा था। उनके बाद उस प्रतिभा का कोई व्यक्ति नहीं आया। इसके अलावा साप्ताहिक हिंदुस्तान कुछ राजनीतिक दांवपेंच में भी फंस गया था। हिंदुस्तान टाइम्स के लिए साप्ताहिक हिंदुस्तान को घाटे पर चलाना भी कोई कठिन नहीं था, पर दुर्भाग्य रहा कि कुछ ऐसे लोगों के बीच में फंस गया जिन्होंने उसे बंद करना ही श्रेयस्कर समझा। ऐसा नहीं था कि पाठक समाप्त हो गए थे, या संपादक इतने गए गुजरे थे, जो चला ही नहीं पा रहे थे।'

आलोक मेहता के अनुसार– 'धीरे–धीरे चीजें बदलीं, संपादक बदले तो गांधी से तो निश्चित रूप से हटे, नेहरू से भी हटे, पर बाद में साप्ताहिक हिंदुस्तान की दिशा न गांधी वाली रही न नेहरू वाली रही। मतलब, बिल्कुल गड्ड–मड्ड सा हो जाना और उसके बाद दिशाहीनता की स्थिति, आखिर यह पतन की ओर तो ले ही जाएगा। मैं ऐसा मानता हूं कि मनोहरश्याम जोशी के बाद दिशाहीनता आई और उसकी प्रसार संख्या गिरी। विज्ञापन तो पहले ही कम आते थे, बाद में और कम हो गए। बाद में पूरे संस्थान में इस बात पर जोर रहा कि जो कुछ चल सकता है, उसी को चलाया जाए, अधिक क्यों चलाया जाए! इस कारण भी साप्ताहिक हिंदुस्तान पतन की ओर बढा।'

दिसंबर 1992 में साप्ताहिक हिंदुस्तान का प्रकाशन स्थगित कर दिया गया। लेकिन अपने 42 वर्ष के कार्यकाल में साप्ताहिक हिंदुस्तान ने हिंदी पत्रकारिता को अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। हिंदी पत्रकारिता के सफर का एक महत्वपूर्ण पड़ाव साप्ताहिक हिंदुस्तान भी था।

नहीं रहे कैमरे के जादूगर जगदीश माली

कैमरे का जादूगर कहे जाने वाले प्रख्यात फोटो पत्रकार जगदीश माली का बीते 13 मई को मुंबई नानावती अस्पताल में निधन हो गया। उनकी उम्र लगभग 60 वर्ष थी।

बताया जाता है कि वह सन् 1998 से ही यकृत और आंत संबंधी बीमारी से पीड़ित थे। जगदीश माली ने फोटोग्राफर के रूप में सन् 1980 के दशक में अपने कैरियर की शुरूआत की थी। फिल्मी दुनिया के सबसे ख्यातिप्राप्त फोटो पत्रकार रहे जगदीश माली ने अनुपम खेर, शबाना आजमी, करीना कपूर, ओम पुरी, रेखा और इरफान खान जैसे फिल्मी सितारों के दुर्लभ चित्र लिए थे। कहा जाता है कि जो दिलकश फोटो माली ने लिए वह वही ले सकते थे, कोई और नहीं। इसीलिए तो उन्हें कैमरे के जादूगर की उपाधि दी गई।

जगदीश माली एक ऐसे फोटोग्राफर रहे, जिन्होंने शबाना आजमी से लेकर करीना कपूर तक फिल्मी दुनिया की दो पीढ़ियों के साथ काम किया था।

राजस्थान केसरी विजय सिंह 'पथिक'

औपनिवेशिक और आधुनिक भारत में किसी भी जनांदोलन का महत्वपूर्ण वाहक पत्रकारिता ही रही है। जनसंचार एवं जनमत निर्माण करने के अलावा भारत में पत्रकारिता ने जनांदोलनों में भी अपना योगदान दिया है। स्वाभाविक है कि वह पत्रकारिता जो क्रांति एवं आंदोलनों का सूत्रपात करे, उसके तेवर भी आंदोलनकारी ही होंगे। पत्रकारिता की इसी क्रांतिकारी परंपरा के महत्वपूर्ण पत्रकारों में से एक थे, विजय सिंह 'पथिक'।

विजय सिंह पथिक का जन्म उत्तर प्रदेश के बुलंदशहर जिले में गुलावठी नामक ग्राम में सन 1882 को हुआ था। उनके पिता का नाम हमीर सिंह एवं माता का नाम कमल था। उनका असली नाम भूप सिंह था, किंतु 1915 के लाहौर असेंबली बम कांड के बाद उन्होंने अपनी पहचान छिपाने के लिए नाम बदलकर विजय सिंह 'पथिक' रख लिया। 'पथिक' के दादा ने भी 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में अपनी प्राणाहुति दी थी। विजय सिंह पर भी अपने दादा का प्रभाव था। उनकी प्रारंभिक शिक्षा पालगढ़ के प्राइमरी स्कूल में हुई। कालेज या स्कूल में पढ़ने का अवसर उन्हें नहीं मिला। प्रारंभिक शिक्षा के पश्चात वे अपनी बड़ी बहन के पास इंदौर चले गए। जहां उनका संपर्क प्रसिद्ध क्रांतिकारी शचीन्द्र सान्याल से हुआ। सान्याल जी को 'पथिक' में छिपे क्रांतिकारी गुणों को पहचानने में देर नहीं लगी। जल्द ही 'पथिक' शचीन्द्र सान्याल के क्रांतिकारी संगठन में शामिल हो गए।

सान्याल और रासबिहारी बोस 'अभिनव भारत समिति' द्वारा देश में सशस्त्र क्रांति की योजना में लगे थे। उन्हीं दिनों राजस्थान में 'वीर भारत सभा' नाम का गुप्त संगठन स्थापित हो चुका था जिसमें विजय सिंह 'पथिक' की महत्वपूर्ण भूमिका थी। उसी दौरान राजस्थान में जन–आंदोलन का प्रारंभ किसान आंदोलन के रूप में हुआ। मेवाड़ में बिजौलिया नामक गांव था, जहां से किसान आंदोलन का सूत्रपात हुआ। पथिक जी को किसानों की दुर्दशा का जब पता चला तो वे बिजौलिया आ गए। यहां उन्होंने 'विद्या प्रचारिणी सभा' की स्थापना की। उन्होंने गांव–गांव घूमकर लोगों को संगठित किया और किसान आंदोलन के लिए प्रेरित किया। पथिक किसानों की समस्याओं को समाचार पत्रों में छपवाते थे और स्वयं भी लिखकर देते थे। यहीं से उन्होंने अपने पत्रकारीय जीवन की शुरूआत की।

विजय सिंह 'पथिक' के सफल नेतृत्व में हुए बिजौलिया आंदोलन से प्रभावित होकर महात्मा गांधी ने उन्हें बंबई बुला लिया। बंबई में निश्चय हुआ कि राजस्थान में चेतना जाग्रत करने के लिए वर्धा से एक समाचार पत्र निकाला जाए। इस पर पथिक जी वर्धा आ गए और वहां से 'राजस्थान केसरी' नाम का साप्ताहिक पत्र निकालना शुरू किया। इस पत्र का आर्थिक पक्ष जमनालाल बजाज देखते थे। अपने उत्कृष्ट राष्ट्रीय विचारों और सरकारी दमन के खिलाफ आवाज उठाने के कारण यह पत्र राजस्थान और मध्य भारत में अत्यंत लोकप्रिय हो गया। 'राजस्थान केसरी' की लोकप्रियता से भयभीत सरकार ने उदयपुर रियासत के 21 जून, 1923 के आदेश में 'केसरी' के प्रवेश को निषिद्ध बताते हुए लिखा–

''लिहाजा जरिए इश्तिहार हाजा हर खास व आम को आगाह किया जाता है कि आयंदा अगर किसी शख्स को प्रताप, राजस्थान केसरी और नवीन राजस्थान अखबारों को मंगाना या किसी के पास इन अखबारों का मौजूद होना या इन अखबारों का कटिंग या हैंडबिल पाया जावेगा तो वह सजा का मुस्तोजिब होगा जिसकी मयाद एक साल सख्त कैद व 1,000 रू. जुर्माना होगा।'' (भारतीय पत्रकारिता कोष, विजयदत्त श्रीधर)

राजस्थान केसरी ने ब्रिटिश सरकार की चूलें हिला दीं। लेकिन कुछ समय बाद पथिक जी और जमनालाल बजाज की विचारधाराओं में तालमेल नहीं बैठ पाया। इसके कारण 'राजस्थान केसरी' का प्रकाशन बंद करना पड़ा। परिणामस्वरूप पथिक अजमेर आ गए और वहां राजस्थान सेवा संघ की स्थापना की तथा 'नवीन राजस्थान' नाम का साप्ताहिक पत्र शुरू किया। जिसका आदर्श वाक्य था–

'यश वैभव सुख की चाह नहीं,

परवाह नहीं जीवन न रहे।

यदि इच्छा है यह है,

जग में स्वेच्छाचार दमन न रहे।'

बिजौलिया के किसान आंदोलन को 'नवीन राजस्थान' ने पूरा समर्थन दिया। बिजौलिया आंदोलन की सफलता को 'नवीन राजस्थान' ने इन शब्दों में व्यक्त किया–

''पाठकों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि आखिर चार वर्ष के कठिन सत्याग्रह के पश्चात बिजौलिया का फैसला हो गया। इसमें संदेह नहीं कि यह फैसला उठते हुए राजस्थान के लिए एक खास संदेश रखता है, परंतु इस संबंध में हम आगे लिखेंगे। यहां हम केवल इस शुभ अवसर पर शासक एवं शासितों को बधाई देना चाहते हैं।'' (राजस्थान के भूले–बिसरे पत्रकार, आर्येंद्र उपाध्याय)

राजनैतिक चेतना जागृत करने में 'नवीन राजस्थान' ने महत्वपूर्ण योगदान दिया था। जिसका उदाहरण उसका यह संपादकीय है–

''सत्ताधारी इतने चौंके क्यों हैं ? इसलिए न कि राजस्थान रूपी परतंत्रता के महाशमन में स्वतंत्रता की अग्नि प्रज्जवलित हो गई है। बिजौलिया से निकली हुई आह की चिंगारी ने सारे राजस्थान की सुप्त शक्तियों को जागृत कर दिया है। निर्मल चंद्रिका में, प्रफुल्ल मलिका में, तरंगित नदी में, कूजित कुटी में, कुसुमों के सौरभ में, बच्चों के हास्य में और वृद्धों के विश्वास में सब ओर उसी अग्नि की चिंगारियां उड़ती नजर आ रही हैं। वे एक जगह बुझाना चाहते हैं, वह दस जगह प्रज्वलित हो उठती हैं। क्यों नहीं बुझती ? इसलिए कि वे अग्नि को अग्नि से बुझाते हैं। उनके ह्दय में स्वार्थ की अग्नि प्रज्जवलित है। उसी को लेकर उस पर डालते हैं, किन्तु वह घृताहुति का काम करती है।'' (राजस्थान के भूले–बिसरे पत्रकार, आर्येंद्र उपाध्याय)

'नवीन राजस्थान' से किसान आंदोलनों को इतना बल मिला कि सरकार के लिए इन आंदोलनों को दबा पाना मुश्किल हो गया। अंत में हार कर मेवाड़ में 'नवीन राजस्थान' के आगमन पर रोक लगा दी गई। सरकार ने अपने राजकीय गजट में इस आशय की घोषणा की कि इस पत्र को पढ़ना, रखना अथवा उसकी पूर्ण या आंशिक सामग्री को प्रचारित–प्रसारित करना अपराध काबिल दस्तन्दाजी माना जाएगा।

सरकार की इस घोषणा के पश्चात विजय सिंह पथिक को 'नवीन राजस्थान' का प्रकाशन बंद करना पड़ा। लेकिन जल्द ही वह 'तरूण राजस्थान' के नाम से सामने आया। जिसने अंग्रेज सरकार की दमनकारी नीतियों की तीखी आलोचना की। 'तरूण राजस्थान' में मुकुट बिहारी वर्मा, रामनाथ गुप्त जैसे पत्रकार कार्यरत थे जो बाद में नामवर संपादक हुए। 'तरूण राजस्थान' ने तत्कालीन समय में राजस्थान क्षेत्र में किसान आंदोलनों को मुखर स्वर देने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी।

विजय सिंह 'पथिक' ने पत्रकारिता के वह मापदंड तय किए, जो पत्रकारिता की वर्तमान पीढ़ी के लिए आदर्श के समान हैं। उनके कार्यों की प्रशंसा करते हुए महात्मा गांधी ने कहा था–

''पथिक काम करने वाला व्यक्ति है, जबकि दूसरे सब लोग बातूनी हैं। पथिक सैनिक, बहादुर और जोशीला है, परंतु जिददी है''

विजय सिंह 'पथिक' ने पत्रकारिता के अलावा लेखक के रूप में भी पहचान बनाई। पथिक जी ने तीस से ज्यादा पुस्तकें लिखी। ज्यादातर लेखन उन्होंने जेल में ही किया। उन्होंने पुराणों, महाभारत और दूसरे प्राचीन ग्रंथों का अध्ययन करके बारह सौ पृष्ठों का विशाल ग्रंथ तैयार किया। वे गांधीवादी सिद्धांतो एवं नीतियों के अनुसार कार्य करना चाहते थे।

राजस्थान में जनआंदोलन के अग्रदूत पथिक जी आजादी के बाद भी गांधी जी के निर्देशानुसार कार्य करना चाहते थे। किंतु सरकारी नीतियों के गांधीवादी मार्गों से हटने के कारण वे निराश थे। आजादी के पश्चात सरकारी नीतियों के प्रति वे काफी चिंतित थे। 28 मई, 1954 को महान क्रांतिकारी एवं पत्रकार विजय सिंह 'पथिक' का अजमेर में देहावसान हो गया।

शीर्ष अधिकारी हों राजी, तभी हो गिरफ्तारी–सुप्रीम कोर्ट

अब महज फेसबुक पर टिप्पणी करने के आरोप में बिना किसी अनुमति के पुलिस किसी व्यक्ति को गिरफ्तार नहीं कर सकती। 16 मई को एक याचिका की सुनवाई करते हुए सुप्रीम कोर्ट ने यह निर्देश जारी किया।

शीर्ष अदालत ने सभी राज्य सरकारों को जनवरी में केंद्र सरकार द्वारा जारी उस एडवायजरी के अनुसार कार्य करने की सलाह दी है, जिसके तहत किसी भी व्यक्ति को फेसबुक पर टिप्पणी करने के आरोप में शीर्ष पुलिस अधिकारियों की अनुमति के बिना गिरफ्तार नहीं किया जा सकता। न्यायमूर्ति दीपक चौहान और दीपक मिश्रा की पीठ ने कहा 'हम राज्य सरकारों को निर्देश देते हैं कि किसी भी गिरफतारी से पहले जारी दिशानिर्देशों का पालन सुनिश्चित करें। हालांकि शीर्ष अदालत ने कहा कि वह इस प्रकार के मामलों में गिरफ्तारी पर रोक नहीं लगा सकती क्योंकि आईटी की धारा पर अदालत ने कोई रोक नहीं लगाई है, जो इस धारा की वैधता पर विचार भी कर रही है।

फेसबुक पर किसी प्रकार की टिप्पणी करने और उसे लाइक करने के मामलों में गिरफ्तारी को लेकर जनता की नाराजगी के मद्देनजर केंद्र सरकार ने जनवरी में यह आदेश जारी किया था कि किसी भी व्यक्ति को शीर्ष अधिकारियों की अनुमति के बगैर गिरफ्तार नहीं किया जा सकता।

कानून की विद्यार्थी श्रेया सिंघल ने याचिका दायर कर कहा था कि आईटी एक्ट की धारा की वैधता से संबंधित मामला अभी अदालत में लंबित है, ऐसे में इस कानून के तहत गिरफ्तारियों पर रोक लगाई जानी चाहिए। इसके जवाब में ही अदालत ने राज्य सरकारों को बिना अनुमति फेसबुक पर कोई पोस्ट करने या लाइक करने पर गिरफ्तारी पर रोक लगाने का निर्देश दिया।

उल्लेखनीय है कि बीते वर्ष नवंबर में शिवसेना प्रमुख की मौत के बाद ठाणे की दो युवतियों को फेसबुक पर कमेंट और लाइक करने पर गिरफ्तार करने पर पूरे देश में लोगों में नाराजगी थी। इसी नाराजगी को देखते हुए ही केंद्र सरकार ने राज्य सरकारों को यह एडवायजरी जारी की थी कि किसी भी व्यक्ति को वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों की अनुमति के बिना गिरफ्तार नहीं किया जा सकता है। ऐसे में अदालत का यह फैसला सोशल मीडिया पर सक्रिय युवाओं के लिए राहत जैसा है। अब राजनीतिक दबाव में पुलिस बेवजह उन्हें गिरफ्तार नहीं कर सकेगी।

गूगल के डूडल में गुल भारत

आज लोगों में यह जुमला आम हो गया है कि कोई भी जानकारी चाहिए तो इंटरनेट पर सर्च कर लो। सब कुछ मिल जाएगा। लगभग सब कुछ मिलता भी है।

गूगल की दुनिया ने लोगों को ज्ञान और संवाद का एक सुलभ मंच उपलब्ध कराया है। यही कारण है कि किसी भी जानकारी के लिए लोगों की निर्भरता इंटरनेट पर बढ़ती जा रही है। युवाओं की जमात के लिए तो किसी भी जिज्ञासा का सहज और अंतिम समाधान इंटरनेट ही है। ऐसे में इंटरनेट की दुनिया में जो भी परोसा जाता है लोग उसे जिज्ञासापूर्ण तरीके से लेते हैं। यही गूगल की सफलता का कारण भी है। किसी को भी उपयोग या उपभोग के लिए आकर्षित करने के लिए यह जरूरी है कि उस व्यक्ति में संबंधित वस्तु अथवा सेवा के प्रति जिज्ञासा पैदा की जाए। ऐसी ही जिज्ञासा गूगल भी जगाता है।

वैश्वीकरण के टूल की बात की जाए तो गूगल वैश्वीकरण का सबसे बड़ा टूल है। वर्तमान वैश्विक ग्राम की अवधारणा को गूगल ने मजबूती प्रदान की है। एक कमरे में बैठा व्यक्ति गूगल के जरिए दुनिया से जुड़ सकता है, संवाद कायम कर सकता है। लेकिन गूगल की दुनिया उसे दुनिया की सैर तो कराती है, पर कहीं न कहीं व्यक्ति को उसकी ही संस्कृति से परे भी ले जाने का काम करती है।

टेलीविजन और बाजार के माध्यम से पश्चिमी देशों ने भारत जैसे विकासशील देशों में उनकी सांस्कृतिक जड़ों को कमजोर कर उपभोक्तावाद की ओर ले जाने के प्रयास किए। अब यही काम गूगल की दुनिया के जरिए भी किया जा रहा है। कहा जाता है कि जिस देश के लोग अपने पिछले इतिहास को भूल जाते हैं, वे अपने देश के बारे में बेहतर भविष्य योजना भी नहीं बना पाते हैं। भारत की युवा पीढ़ी के जेहन से उसके इतिहास को विस्मृत करने के काम को गूगल भी अंजाम दे रहा है। जिसका उदाहरण है गूगल का डूडल।

इंटरनेट की शब्दावली में डूडल उन चित्रों को कहा जाता है जो किसी विशेष अवसर या व्यक्ति की याद में गूगल के होमपेज पर प्रदर्शित किए जाते हैं। लेकिन बात करें इन डूडल्स की तो भारतीय सरोकारों से यह डूडल लगभग अछूते ही हैं। वर्ष 2012 में प्रदर्शित डूडल्स की बात की जाए तो वर्ष की शुरूआत नववर्ष के बधाई संदेश वाले डूडल से शुरू होती है। इसके बाद 7 जनवरी को अमरीकी कार्टूनिस्ट चार्ल्स एडम की जयंती मनाई जाती है। जिनके नाम से शायद ही भारत के अधिकतर इंटरनेट उपयोगकर्ता वाकिफ होंगे। इसके बाद 11 जनवरी को निकोलस स्टेनो नामक के डेनिश वैज्ञानिक को याद किया जाता है। इसी प्रकार से अनेकों डूडल प्रदर्शित किए जाते हैं जिनका भारत से कोई सरोकार नहीं है। हालांकि 26 जनवरी को भारतीय गणतंत्र दिवस और 15 अगस्त को भारतीय स्वतंत्रता दिवस जरूर गूगल पर मनाया जाता है। लेकिन इसके अलावा वर्ष भर भारतीय इंटरनेट उपयोगकर्ता गूगल के डूडल के जरिए दुनिया की सैर तो करते हैं, लेकिन भारत से अछूते ही रहते हैं। गौरतलब है कि जिन महात्मा गांधी के बारे में पूरी दुनिया जानना चाहती है, उनका स्मरण करने के लिए गूगल के डूडल के पास वक्त नहीं होता है। जबकि बापू के जन्मदिवस को संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी अंतर्राष्ट्रीय अहिंसा दिवस के तौर पर घोषित किया है। सन् 2011 के आंकड़ों के अनुसार चीन में लगभग 54 करोड़ लोग इंटरनेट की दुनिया में सक्रिय हैं, वहीं अमरीका में लगभग 24 करोड़ दो लाख लोग गूगल की दुनिया में मौजूद हैं। वहीं लगभग 11 करोड़ दस लाख इंटरनेट यूजर्स के साथ इंटरनेट उपयोगकताओं की संख्या के लिहाज से भारत दुनिया का तीसरा देश है। अब सवाल यह है कि जिस गूगल की दुनिया में सक्रिय लोगों की संख्या के लिहाज से भारत तीसरे स्थान पर है, वहीं गूगल के डूडल ने भारत को एक तरह से अनलाइक ही किया हुआ है।

वर्ष भर प्रकाशित डूडल स्वीडन, अमरीका, इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी और इटली आदि की सैर तो कराते हैं, लेकिन भारत की अस्मिता से इंटरनेट यूजर्स का परिचय नहीं कराते। अमरीका के मार्टिन लूथर किंग की अश्वेत क्रांति को तो गूगल बताता है, लेकिन गांधी या अंबेडकर के जीवन परिचय और उनके सामाजिक योगदान से वह परे ही रहता है। आज भारत में जहां इंटरनेट को क्रांति का वाहक कहा जा रहा है, कुछ एक आंदोलनों से ऐसा साबित हुआ भी है। लेकिन यही इंटरनेट बीते समय में हमारी क्रांतिकारी विरासत की जानकारी ही युवा पीढ़ी को नहीं देता। आज डूडल पर भगत सिंह, चंद्रशेखर आजाद नदारद हैं तो इंटरनेट के साथ पली–बढ़ी पीढ़ी किस प्रकार इनके आदर्शों को आत्मसात कर पाएगी।

सच यह है कि गूगल के होमपेज पर प्रदर्शित होने वाले डूगल को लेकर कोई निश्चित नीति नहीं है और गूगल से जुड़े कुछ एनीमेटर ही इस काम को अंजाम देते हैं। ऐसे में गूगल के डूडल में भारत को भी उपयोगकर्ताओं की संख्या के अनुपात में हिस्सेदारी अवश्य मिलनी चाहिए। या फिर भारत को भी गूगल के विकल्प पर विचार करते हुए स्वदेशी सर्च इंजन के आविष्कार पर विचार करना चाहिए। यह इस दिशा में सोचने का वक्त है कि क्या भारत को स्वदेशी सर्च इंजन की आवश्यकता है, जो हमारी भाषा में हमारी संस्कृति और मूल्यों को प्रोत्साहित करने का कार्य करे और इंटरनेट की दुनिया में भारतीय क्रांति का वाहक बन सके। यहां कहने का अर्थ यह नहीं कि गूगल का विरोध है, लेकिन हमें गूगल के विकल्प के तौर स्वदेशी सर्च इंजन के बारे में अवश्य विचार करना चाहिए।

ड्रैगन की ढाल बना चीनी मीडिया

किसी भी देश में लोकतंत्र को बनाए रखने, जनहित की आवाज उठाने के लिए मीडिया को महत्वपूर्ण माना जाता है। लेकिन अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कूटनीति में भी मीडिया का योगदान होता है, जिसे नकारा नहीं जा सकता। खाड़ी युद्ध के बाद से तो अंतर्राष्ट्रीय कूटनीति के स्तर पर मीडिया का इस्तेमाल बढ़ा है।

अमरीका–इराक युद्ध, अमरीका–अफगान युद्ध में भी अमरीकी पक्ष को आतंक के मुक्तिदाता के रूप में दिखाने के लिए इस्तेमाल किया गया था। इराक के पूर्व शासक सद्दाम हुसैन की मूर्ति को गिरते हुए और वहां कुछ इराकी लोगों के नृत्य करने के दृश्य को टेलीविजन चैनलों पर बार–बार दिखाया गया था। इससे यह साबित करने का प्रयास किया गया था कि इराक पर अमरीकी हमले से इराकियों को खुशी है और वह इसको सद्दाम के दुर्दांत शासन से मुक्ति के तौर पर देख रहे हैं।

कुछ ऐसा ही रवैया भारतीय सीमा में चीनी सैनिकों की घुसपैठ के बाद चीनी मीडिया का भी था। चीन के सैनिकों के भारतीय सीमा में घुसने के बाद स्वाभाविक रूप से सीमा पर तनाव बढ़ना था। हालांकि भारत सरकार इस मुद्दे पर आश्चर्यजनक रूप से चुप्पी साधे रही, लेकिन विपक्षी दलों और मीडिया ने जरूर इस मुद्दे पर सरकार को प्रमुखता से घेरने का काम किया। वहीं चीनी मीडिया ने अपनी सरकार की विस्तारवादी नीतियों के लिए ढाल के रूप में काम किया।

बीते 15 अप्रैल को लद्दाख के दौलत बाग ओल्डी सेक्टर में भारतीय सीमा के अंदर 19 किलोमीटर तक चीनी सैनिकों के घुसपैठ करने के बाद भारत–चीन सीमा पर तनाव की स्थिति उत्पन्न हो गई थी। इस मुद्दे पर चीनी मीडिया के रूख की बात करें तो उसने घुसपैठ के मुद्दे को ही भटकाते हुए इसे भारतीय मीडिया की देन बताया। जबकि चीनी मीडिया बड़ी चालाकी से इस बात को टाल गया कि आखिर भारत–चीन सीमा पर तनाव का कारण तो भारतीय सीमा में चीनी सैनिकों की घुसपैठ ही है।

चीन की विस्तारवादी नीति के लिए ढाल का काम करते हुए चीन के प्रचलित समाचार पत्र ने भारत–चीन के बीच तनाव का कारण बताते हुए लिखा कि– ''भारत–चीन के बीच तनाव की स्थिति उस वक्त उत्पन्न हुई, जब भारतीय मीडिया ने यह प्रचारित किया कि भारत–चीन की पश्चिमी विवादित सीमा में चीनी सैनिकों ने मध्य अप्रैल में घुसपैठ की है।''

वहीं चीनी सरकार के पक्ष में चाइना डेली ने लिखा कि– ''बीजिंग ने इन आरोपों को विवादास्पद करार दिया है और कहा कि चीनी सैनिक सीमा पर शांति और सौहार्द की स्थिति बनाए रखने के लिए तत्पर है और सैनिकों ने भारतीय सीमा में प्रवेश नहीं किया है।''

चीनी मीडिया की इस रिपोर्टिंग के माध्यम से आसानी से यह पता चलता है कि किस प्रकार चीनी सरकार की विस्तारवादी नीति के लिए प्रोपेगेंडा फैला रहा है। प्रोपेगेंडा यह कि पहले तो चीनी मीडिया ने लाइन आफ कंट्रोल को ही विवादासपद करार दिया, जिस पर भारत को हमेशा से ऐतराज रहा है। इस एक दांव के जरिए चीनी मीडिया ने भारत के ऐतराज को ही निराधार साबित करने की कोशिश की। किसी झूठ को सत्य की भांति प्रचारित करने या उसको सत्य के स्थान पर प्रस्थापित करने के प्रयास को प्रोपेगेंडा कहा जाता है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जाता है कि किसी झूठ को सौ बार बोला जाए तो वह सत्य प्रतीत होने लगता है।

चीनी मीडिया ने भी लाइन आफ कंट्रोल को विवादित ठहराने के झूठ को ही दोहराने का फैसला कर लिया है। चीनी मीडिया के इस प्रोपेगेंडे के असर की बात की जाए तो पश्चिमी देशों के मीडिया जगत में भी इसका प्रभाव हुआ और उन्होंने भी भारत–चीन के बीच तनाव को घुसपैठ नहीं बताया। पश्चिमी मीडिया ने कहा कि भारतीय मीडिया और अधिकारियों की ओर से यह कहा गया है कि चीनी सैनिकों ने भारतीय सीमा में घुसपैठ की, तब से ही भारत और चीन सीमा पर तनाव की स्थिति बनी हुई है।

चीनी मीडिया के प्रोपेगेंडे के असर को देखने के लिए 3 मई को वायस आफ अमरीका की वेबसाइट पर प्रकाशित रिपोर्ट को देखना उचित होगा, जिसने लिखा–''पिछले महीने भारतीय अधिकारियों ने बताया था कि चीनी सैनिकों ने भारत–चीन की लद्दाख सीमा में घुसपैठ कर अपने टेंट लगा लिए हैं। वहीं चीन ने इस आरोप को नकारते हुए कहा कि चीनी सैनिकों ने कोई घुसपैठ नहीं की है और वे वास्विक नियंत्रण रेखा के चीनी

इलाके में ही हैं। यह घटना लंबे समय से चीन–भारत के मध्य चले आ रहे सीमा विवाद का ही हिस्सा है, जो कई दौर की वार्ताओं के बाद भी सुलझ नहीं सका है।''

वायस आफ अमरीका की इस रिपोर्ट का विश्लेषण करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि जो सीमा विवादित नहीं थी, मीडिया रिपोर्टों ने उस सीमा को विवादित प्रचार करना शुरू कर दिया। यहीं नहीं चीन की दुस्साहसी घुसपैठ को नजरअंदाज करते हुए इसे लंबे समय से चले आ रहे सीमा विवाद का ही एक हिस्सा करार दिया। कहना न होगा कि मीडिया की रिपोर्टें आने वाले वक्त के लिए एक दस्तावेज भी होती हैं और वह दस्तावेजीकरण यदि एक प्रोपेगेंडे के तहत ही हो तो सच के स्थापित होने की संभावनाएं कहां रह जाएंगी।

इसी मामले में जब भारत सरकार ने देश में उभर रहे जनाक्रोश के कारण चीनी उत्पादों को भारतीय बाजार में रोकने के उपक्रम शुरू किए तो चीनी मीडिया और सरकार ने एक बार फिर अपने रूख में बदलाव किया। इसकी बानगी यह है कि बीते 9 मई को सलमान खुर्शीद की चीन यात्रा का चीनी मीडिया ने जमकर स्वागत किया और सीमा के मुद्दे को नेपथ्य में धकेलते हुए व्यापारिक संबंधों को महत्वपूर्ण बताने का काम किया। यही नहीं चीन ने एशिया के दो बड़े देशों में उपजे तनाव के लिए अपनी नीतियों को नहीं बल्कि पश्चिमी मीडिया के प्रचार को दोषी ठहराया। चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के मुखपत्र पीपुल्स डेली ने लिखा कि–''भारतीय विदेश मंत्री की चीन यात्रा दोनों ही देशों के लिए महत्वूपर्ण है और यह दुनिया के दो बड़े देशों के बीच मित्रता को बढ़ाने में सहायक होगी। खुर्शीद के दौरे ने सारे विश्व का ध्यान आकर्षित किया है और पश्चिमी मीडिया ने इस दौरे का कारण रणनीतिक प्रतिद्वंद्विता और सीमा विवाद बताया है''

> किसी झूठ को सत्य की भांति प्रचारित करने या उसको सत्य के स्थान पर प्रस्थापित करने के प्रयास को प्रोपेगेंडा कहा जाता है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जाता है कि किसी झूठ को सौ बार बोला जाए तो वह सत्य प्रतीत होने लगता है। चीनी मीडिया ने भी लाइन आफ कंट्रोल को विवादित ठहराने के झूठ को ही दोहराने का फैसला कर लिया है।

चीनी मीडिया जिसने घुसपैठ के बाद बढ़े तनाव के लिए भारतीय मीडिया को जिम्मेदार बताया था, उसने ही अपने रूख में बदलाव करते हुए पश्चिमी मीडिया पर दुष्प्रचार का आरोप जड़ दिया। कहना न होगा कि चीन के साम्राज्यवादी मंसूबों की सफलता के लिए चीनी मीडिया ने भी सरकार की ढाल के रूप में काम किया। दूसरी तरफ भारतीय मीडिया की बात करें तो वह भारत के राष्ट्रीय हितों को वैश्विक स्तर पर स्थापित करने

में असफल रहा अथवा उसने इसका प्रयास ही नहीं किया। इसके उलट भारत का मीडिया रेप जैसे मामलों पर तेजतर्रार दिखा, यहां कहने का अर्थ यह नहीं है कि मीडिया को रेप के मामलों को तवज्जो नहीं देनी चाहिए। लेकिन राष्ट्रहित से जुड़े मुद्दे भी तो मीडिया विमर्श के लिए कुछ मांगते हैं।

हालांकि चीन की मीडिया से भारत की तुलना नहीं की जा सकती क्योंकि चीन में मीडिया पूरी तरह सरकार अधीन है। वहीं भारत में मीडिया का अपना स्वतंत्र अस्तित्व है। पर इस स्वतंत्र अस्तित्व का अर्थ सरकार को दर्पण दिखाना ही नहीं, राष्ट्रहित के लिए कुछ अर्पण करना भी है। अंतर्राष्ट्रीय कूटनीति के स्तर पर यह जरूरी लगता है कि मीडिया और सरकार समन्वित रूप से कार्य करें और दोनों एक ही स्वर में बात करें। तभी वैश्विक कूटनीति में भारत भी अपने पक्ष को मजबूती से रख पाएगा। अकसर भारतीय मीडिया ऐसे मुद्दों को तरजीह देता है, जिससे अन्य देशों में भी भारत की छीछालेदर हो।

यह सही है कि देश के भीतर की समस्याओं को उठाना मीडिया काम है, लेकिन भारत की मीडिया को अपनी जिम्मेदारियों का विस्तार करना होगा। उसे वैश्विक परिदृश्य में भारत के अनुकूल नीतियों को स्थापित करने का प्रयास करना होगा। यदि चीनी मीडिया नए प्रोपेगेंडे गढ़ सकता है और चीन की विस्तारवादी नीतियों की ढाल बन सकता है तो भारतीय मीडिया को भी अपने पक्ष को वैश्विक परिदृश्य में मजबूती से स्थापित करने के प्रयास अवश्य करने चाहिए।

क्या आईपीएल के दौरान महत्वपूर्ण राष्ट्रीय मुद्दे नेपथ्य में चले जाते हैं?

आईपीएल एक बाजार है और बाजार के सामने जनहित की खबरें नहीं आ पाईं। यह हमेशा से होता रहा है। अब बिहार में राजनीतिक उथल–पुथल के समाचारों के बीच जनहित के समाचार नेपथ्य में चले गए हैं। इसके अलावा विभिन्न धर्म प्रचारकों के विज्ञापन अखबारों में काफी स्थान ले रहे हैं। यह सच है कि आईपीएल सीजन के दौरान महत्वपूर्ण राष्ट्रीय समाचार हाशिए पर चले जाते हैं।

संजय कुमार, समाचार संपादक, आकाशवाणी

इस देश में क्रिकेट पहले से ही बड़ी चीज रहा है। इसलिए ऐसा होता है। इससे अलग हट कर यदि आईपीएल के हालिया में फिक्सिंग की बात की जाए तो क्रिकेट मैचों की तरह उसे भी कवरेज मिली और किसी भी मैच की तरह उसे राष्ट्रीय महत्व के समाचार की तरह प्रस्तुत किया गया। मुझे नहीं लगता कि मीडिया में किसी योजना के तहत ऐसा किया गया, बल्कि क्रिकेट की लोकप्रियता ही इतनी है कि कई बार अन्य खबरें नेपथ्य में चली गई प्रतीत होती हैं।

विकास शर्मा, नवभारत टाइम्स

यह सही है कि आईपीएल के सीजन के दौरान राष्ट्रीय महत्व की खबरें नेपथ्य में चली जाती हैं। लेकिन हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि मीडिया की वजह से ही फिक्सिंग के मामलों में नाम उछलने के कारण बीसीसीआई प्रमुख का सिंहासन हिल गया। यह मीडिया ही था, जिसने फिक्सिंग के मुद्दे को लगातार उठाया और श्रीनिवासन पर इस्तीफा देने का दबाव बनाया। रही बात आईपीएल सीजन के दौरान अन्य राष्ट्रीय समाचारों के नेपथ्य में जाने की तो आईपीएल की लोकप्रियता ही इसका बड़ा कारण थी और अब फिक्सिंग के विवाद के कारण इसकी लोकप्रियता घटेगी तो निश्चित तौर पर आईपीएल की मीडिया कवरेज में भी कमी आएगी।

दीपक कुमार, टीवी 100

जैसे ही हर साल आईपीएल का सीजन आता है तो मीडिया को एक सबसे बड़ा मसाला मिल जाता है। जिसे दिन–रात बड़ी फुटेज के साथ दिखाया जाता है। ऐसे में अन्य बड़ी खबरों की अनदेखी कर दी जाती है, फिर चाहे वह राजनीतिक समस्या हो या सामाजिक। इस वर्ष भी आईपीएल के दौरान चीनी घुसपैठ के मुद्दे को उतनी कवरेज नहीं दी गई, जितनी दी जानी चाहिए थी। दरअसल, आईपीएल बड़ी राशि और चमक–धमक का खेल है, जो मीडिया को भी आकर्षित करता है। हाल ही में कुछ नए खुलासों और फिक्सिंग ने तो आईपीएल को पूरी तरह ढोंग साबित कर ही दिया है। ऐसे में मीडिया को भी अपनी सामाजिक जिम्मेदारियों को समझते हुए आईपीएल को कवरेज देने का काम बंद कर देना चाहिए। यदि मीडिया आईपीएल को कवरेज देना बंद कर देगा तो निश्चित तौर पर आईपीएल की लोकप्रियता में भी गिरावट आएगी।

वंदना शर्मा, हिंदुस्थान समाचार

आईपीएल के दौरान महत्वपूर्ण राष्ट्रीय मुद्दे नेपथ्य में चले गए, ऐसा कहना ठीक नहीं होगा। मीडिया ने उन सभी समाचारों को प्रमुखता दी है, जिनकी प्रासंगिकता उस वक्त रही है। इसके अलावा यदि आईपीएल की मीडिया कवरेज की बात की जाए तो आम जनता का बड़ा वर्ग यदि आईपीएल की खबरों को देखना चाहता है, तभी मीडिया उन समाचारों को दिखाता है। यदि दर्शक कोई समाचार नहीं देखना चाहेगा तो मीडिया उसे दर्शकों पर जबरदस्ती नहीं थोप सकता। सच यह है कि दर्शकों के बड़े वर्ग में आज भी क्रिकेट की भारी लोकप्रियता है और उसी वजह से मीडिया को भी आईपीएल को प्रमुखता देनी पड़ती है।

सागर मिश्र, सह संपादक हिंदुस्तान,दैनिक

जी हां, ये बिल्कुल सही है कि मीडिया अपनी टीआरपी के लिए कुछ भी कर सकता है। आईपीएल के चलते कोयला आवंटन तक की कई खबरों को नजर अंदाज कर दिया गया था। वैसे भी आज की मीडिया को तो बस मसाला चाहिए, चाहे फिर वो कहीं से भी मिलें और कैसे भी मिलें लेकिन मीडिया को अब राष्ट्रहित की पत्रकारिता शुरू कर देनी चाहिए।

रजनीकांत, राष्ट्रीय सहारा

नहीं, ऐसा बिल्कुल नहीं है। खबर तो खबर ही है फिर चाहे वो क्रिकेट की हो या राष्ट्र की। क्रिकेट की उपलब्धी भी राष्ट्रहित में आती है और हम पत्रकारों का काम भी राष्ट्रहित में काम करने का होता है। और जहां तक बात रही राष्ट्रीय मुद्दे की, तो वो भी खबरों में रहते हैं लेकिन उनका स्थान उस दिन नीचे हो जाता है लकिन उसकी अनदेखी नहीं होती।

गरिमा, इंड़िया टीवी